अप्प-संबोह-कव्व

डॉ. कस्तूरचन्द्र 'सुमन'
(जैनविद्या संस्थान, श्रीमहावीरजी)

प्रकाशक
अपभ्रंश साहित्य अकादमी
जैनविद्या संस्थान
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी
राजस्थान

☐ प्रकाशक
अपभ्रंश साहित्य अकादमी,
जैनविद्या संस्थान,
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी,
श्रीमहावीरजी–322220 (राजस्थान)

☐ प्राप्ति-स्थान
1 जैनविद्या संस्थान, श्रीमहावीरजी
2. अपभ्रंश साहित्य अकादमी
दिगम्बर जैन नसियां भट्टारकजी,
सवाई रामसिंह रोड,
जयपुर–302004

☐ प्रथम बार, 1997, 500

☐ मूल्य
पुस्तकालय संस्करण 70/–
विद्यार्थी संस्करण 60/–

☐ मुद्रक
मदरलैण्ड प्रिंटिंग प्रेस
6–7, गीता भवन, आदर्श नगर
जयपुर–302004

विषय-सूची

आरम्भिक			
प्रकाशकीय			
प्रस्तावना			–
		मूलभाग	पृष्ठ
		प्रथम-सन्धि	2 से 41
		अहिंसाणुव्रत-चिंतन 1/1/1 से 1/13/4	2 से 25
क्रमांक	कडवक संख्या	विषय-वस्तु	
1	1	वीर वर्द्धमान गुण-स्मरण	2 से 3
2	2	रचना-उद्देश्य	4 से 5
3	3	निजोपदेश-हेतु	6 से 7
4	4	जैसी पूजा वैसा फल	8 से 9
5	5	गुरु-स्वरूप	10 से 11
6	6	गुरु-विनय-माहात्म्य	12 से 13
7	7	धर्म स्वरूप एवं अष्टमूल गुण	14 से 15
8	8	जीव-वध-निषेधात्मक उपादेश	16 से 17
9	9	जीव-भेद, अहिंसाव्रत-स्वरूप	18 से 19
10	10	क्रोध-हेतु और स्वकर्म	20 से 21
11	11	उत्तम-क्षमा	22 से 23
12	12	अहिंसा-देशव्रतात्मक चिंतन	24 से 25
		सत्याणुव्रत 1/13/5 से 1/16/5 तक	
13	13	सत्याणुव्रत-विधि	26 से 27
14	14	सत्याणुव्रत-विधि	28 से 29

क्रमांक	कडवक संख्या	विषयवस्तु	पृष्ठ संख्या
15	15	सत्याणुव्रत-विधि	30 से 31
16	16	सत्याणुव्रत-विधि	32 से 33
		अचौर्याणुव्रत-चिंतन 1/16/6 से 1/20 तक	
17	16	अदत्त परवस्तु ग्रहण एवं कूट लेखन-निषेध	32 से 33
18	17	पर-वंचण एवं स्व-दोष को पर-दोष बताने का त्याग	34 से 35
19	18	ऋणी के प्रति साहूकार का और मालिकों का सेवकों के प्रति अचौर्यात्मक चिंतन	36 से 37
20	19	अचौर्यव्रत के अतिचार	38 से 39
21	20	साहूकार का ऋणी के प्रति व्यवहार	40 से 41
		द्वितीय सन्धि	42 से 95
		ब्रह्मचर्याणुव्रत	
22	1	ब्रह्मचर्याणुव्रत-स्वरूप तथा व्रत-साधना एवं व्रत-भंग-फल	42 से 43
23	2	ब्रह्मचर्याणुव्रत भावनात्मक चिंतन	44 से 45
24	3	पर-स्त्री अवलोकनात्मक चिंतन	46 से 47
25	4	ब्रह्मचर्याणुव्रत-साधना एवं विराधना फल	48 से 49
26	5	ब्रह्मचर्य के गुण और मैथुन के दोष	50 से 51
27	6	ब्रह्मचर्य की दुष्करता	52 से 53
28	7	ब्रह्मचर्य-साधना हेतु परस्त्रीत्याग-परामर्श	54 से 55
29	8	परस्त्री-दर्शस्पर्श-वर्जनात्मक उपदेश	56 से 57
30	9	पुनः व्रतग्रहणात्मक-उपदेश	58 से 59
31	10	मैथुन प्रवृत्ति एवं निवृत्ति फल	60 से 61
32	11	ब्रह्मचर्य साधनाविधि एवं माहात्म्य	62 से 63

क्रमांक	कडवक संख्या	विषयवस्तु	पृष्ठ संख्या
33	12	ब्रह्मचर्य स्वरूप एवं ब्रह्मचर्यव्रत फल	64 से 65
34	13	ब्रह्मचर्यव्रती नारी–कर्तव्य	66 से 67
35	14	मिथ्यादेव–पूजा–निषेध	68 से 69
36	15	ब्रह्मचर्यव्रत–निर्वहन–हेतु	70 से 71
37	16	पर पुरुष सम्बन्धी नारी दृष्टि विचार	72 से 73
38	17	नारियों के लिए व्रतात्मक दिशाबोध	74 से 75
39	18	परित्यक्ता नारी को व्रतात्मक उपदेश	76 से 77
40	19	विधवा नारी को व्रतात्मक उपदेश	78 से 79
41	20	बाल विधवा नारी की दैनिकचर्या	80 से 81
42	21	व्रतविहीना नारी की स्थिति	82 से 83
43	22	बालविधवा नारी को सदुपदेश	84 से 85
44	23	व्रताचारिणी विधवा का आचार विचार	86 से 87
45	24	व्रताचारिणी बाला की धार्मिकचर्या	88 से 89
46	25	व्रतोपवास–फल	90 से 91
47	26	व्रतभगस्थिति में नारी का कर्तव्य	92 से 93
48	27	ब्रह्मचर्यव्रत माहात्म्य	94 से 95
		तृतीय-सन्धि	
		परिग्रह–परिमाण–व्रत	96 से 117
49	1	परिग्रहपरिमाणव्रताचरण परामर्श	96 से 97
50	2	परिग्रहपरिमाणव्रत–स्वरूप एवं निर्लोभवृत्ति	98 से 99
51	3	परिग्रहपरिमाणव्रत–साधनाविधि	100 से 101
52	4	व्रत में संतोषवृत्ति की उपादेयता	102 से 103

क्रमांक	कडवक संख्या	विषयवस्तु	पृष्ठ संख्या
53	5	व्रत पालन से दु:खी नहीं	104 से 105
54	6	व्रतात्मक अन्य चिंतन	106 से 107
55	7	लक्ष्मी-सद्भाव एवं असद्भाव कालीन कर्तव्य	108 से 109
56	8	परिग्रहपरिमाणव्रती का चोर के प्रति व्यवहार	110 से 111
57	9	व्रतसाधनात्मक हेयोपादेय विचार	112 से 113
58	10	व्रताचरण सम्बन्धी सदुपदेश	114 से 115
59	11	व्रताचरण में सम्यक्त्व की उपादेयता	116 से 117
60		प्रशस्ति	118 से 119
61		विशिष्ट-शब्द सूची	121 से 132
62		सूक्तियाँ	133 से 138
63		शुद्धि-पत्र	139 से 140

— — —

आरम्भिक

'अप्पसंबोहकव्व' को पाठकों के हाथों में समर्पित करते हुए हमें हर्ष का अनुभव हो रहा है ।

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी द्वारा संचालित अपभ्रंश साहित्य अकादमी की स्थापना ई. सन् 1988 में की गई थी। इस अकादमी के माध्यम से पत्राचार द्वारा अपभ्रंश का अध्यापन किया जाता है। अपभ्रंश की सम्पादित पाण्डुलिपियों का प्रकाशन भी इसकी योजना के अन्तर्गत है। इसी योजना के अन्तर्गत 'अप्पसंबोहकव्व' का प्रकाशन किया जा रहा है।

'अप्पसंबोहकव्व' में गृहस्थ-धर्म का विस्तार से वर्णन किया गया है। "अहिंसाणुव्रती वैर नहीं रखता। वह अनुपकारी का भी उपकार करता है। मन-वचन-काय से दया में तल्लीन रहता है"। "सत्याणुव्रती सर्वजीव-हितैषी वाणी बोलता है। इसमें कर्कशता/कटुता के लिए स्थान नहीं है।" "अचौर्याणुव्रती साहूकार ऋणी को सताकर धन नहीं वसूलता है।" "ब्रह्मचर्याणुव्रती के लिए भोग-लिप्सा के त्याग का उपदेश है" "परिग्रह-परिमाणाणुव्रती को धन की कामना त्यागने का शिक्षण दिया गया है।" इस तरह से 'अप्पसंबोहकव्व' में पाँचों अणुव्रतों की चर्चा की गई है।

अप्पसंबोहकव्व के सम्पादन के लिए हम डॉ. कस्तूरचन्द्र 'सुमन' के आभारी हैं। पुस्तक-प्रकाशन के लिए जैनविद्या संस्थान समिति के संयोजक डॉ. कमलचन्द सोगाणी, अपभ्रंश साहित्य अकादमी के कार्यकर्ता एवं मदरलैण्ड प्रिन्टिंग प्रेस, जयपुर धन्यवादार्ह हैं।

बलभद्रकुमार जैन
संयुक्त मंत्री

नरेशकुमार सेठी
अध्यक्ष

प्रबन्धकारिणी कमेटी,
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी

प्रकाशकीय

'अप्पसंबोहकव्व' श्रावकाचारों की परम्परा में एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें पाँच अणुव्रतों – अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, परिग्रह-परिमाणाणुव्रत तथा ब्रह्मचर्याणुव्रत की विस्तार से चर्चा हुई है। "ब्रह्मचर्यव्रत के निरूपण में कवि ने पर्याप्त विस्तार दिखलाया है। वट्टकेर, कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, अकलंक और वसुनन्दि आदि आचार्यों के ग्रन्थों से कवि ने केवल बीजसूत्र ही ग्रहण किये हैं और उनके आधार से उसने नई-नई वनराजि प्रस्तुत की है। ऐसा विस्तार सम्भवतः अन्यत्र नहीं मिलेगा। नर और नारी इन दोनों की दृष्टि से पृथक्-पृथक् ब्रह्मचर्य का स्वरूप, सीमाएं एवं गुण-दोष इस काव्यग्रन्थ में मार्मिक शैली में विस्तृतरूपेण वर्णित है। आगम ग्रन्थों में केवल पुरुष की दृष्टि से ब्रह्मचर्य का प्रतिपादन किया गया है, नारी की दृष्टि से नहीं पर प्रस्तुत काव्य में उभय-दृष्टियों को अपनाकर एक नवीन दिशा प्रस्तुत की गई है।" कवि गृहस्थों के मध्य रहता था, गृहस्थों के आचार-विचार, उनकी कमजोरियों एवं उनके अन्य रीति-रिवाजों से पूर्णतया परिचित था। अतएव उसने गार्हस्थिक लोक-जीवन के विभिन्न सम्बन्धों को लेकर आचार और आध्यात्मिक तत्वों का समन्वय प्रस्तुत किया है। अचौर्याणुव्रत में ऋणी और साहूकार के सम्बन्धों की चर्चा करके व्रत को एक नया आयाम प्रदान किया गया है।

जैनविद्या संस्थान में कार्यरत डॉ. कस्तूरचन्द्र 'सुमन' ने संस्थान के पाण्डुलिपि विभाग में विद्यमान 'अप्पसंबोहकव्व' की तीन प्रतियों के आधार पर इसका सम्पादन किया है। संस्थान में उपलब्ध इसकी सर्वाधिक प्राचीन प्रति सवत् 1534 (ई. सन् 1477) की है। सम्पादन हेतु इस कृति का चयनकर उन्होंने श्रावकाचारों की परम्परा को समृद्ध किया है। डॉ. सुमन ने 'अप्पसंबोहकव्व' का सम्पादन कर एक महत्वपूर्ण कार्य किया है, वे साधुवाद के पात्र हैं।

पुस्तक के प्रकाशन में सहयोगी कार्यकर्त्ता एवं मदरलैण्ड प्रिन्टिंग प्रेस, जयपुर धन्यवादार्ह हैं।

डॉ कमलचन्द सोगाणी
संयोजक
जैनविद्या संस्थान समिति

अप्प-संबोह-कव्व

प्रस्तावना

पृष्ठभूमि

जैनविद्या संस्थान की प्रमुख योजना—"जैनपुराणकोश" के संपादन का कार्य पूर्ण होते ही आगामी योजना पर विचार किया गया। संस्थान के पाण्डुलिपि विभाग में संगृहीत किसी अप्रकाशित पाण्डुलिपि का संपादन करने का विचार प्रस्तुत किए जाने पर संस्थान के तत्कालीन संयोजक श्री ज्ञानचन्द्र जी 'खिन्दूका' और वर्तमान संयोजक डा. कमलचन्द जी 'सोगानी' ने आध्यात्मिक ग्रन्थ अपेक्षाकृत कम प्रकाशित होने से किसी आध्यात्मिक अप्रकाशित रचना का संपादन कराने के भाव प्रकट किए। फलस्वरूप पाण्डुलिपियों की सूची देखकर प्रस्तुत रचना "अप्प-संबोह-कव्व" का संपादन के लिए चयन हुआ।

पाण्डुलिपि-परिचय

संस्थान के पाण्डुलिपि विभाग से प्रस्तुत काव्य की तीन पाण्डुलिपियों की फोटो प्रतियां प्राप्त हुयीं, जिनका परिचय निम्न प्रकार है—

"क" प्रति

यह सर्वाधिक प्राचीन प्रति है। इसका कुल आकार $28\frac{1}{2} \times 11\frac{1}{2}$ से.मी. है। लेखन कार्य 23×8 सेन्टीमीटर में हुआ है। इसके ऊपर-नीचे, दायें, बायें चारों ओर $1\frac{1}{2}$–$1\frac{1}{2}$ से मी. हाँशिया छोड़ा गया है। प्रत्येक पृष्ठ पर 9 पंक्तियां और प्रत्येक पंक्ति में लगभग 30 से 35 अक्षर हैं। पत्र के मध्य में $3\frac{1}{2}$ से.मी. चौकोर रिक्त स्थान छोड़ा गया है। ऊपर की चार और नीचे की दो पंक्तियां लगातार लिखी गयी हैं। मध्य की तीन पंक्तियों के मध्य उक्त रिक्त स्थान है। इस चौकोर रिक्त स्थान के मध्य में काली स्याही से पूरित 2 से.मी. का एक गोल निशान बना हुआ है। मध्यवर्ती तीनों पंक्तियों में अक्षर संख्या 30 व्यवहृत हुई है और शेष इतर पंक्तियों में सामान्यतः 35 अक्षर। पंक्तियों की दोनों ओर आरम्भ और अन्त में दो-दो खड़ी रेखाएँ खींची गयी हैं तथा रेखाओं के पश्चात् आधा से. मी. रिक्त स्थान छोड़कर रिक्त स्थान को पुनः दो खड़ी रेखाओं में बन्द किया गया है। यह रिक्त स्थान काली स्याही से भरा हुआ है।

लेखन स्वच्छ और शुद्ध है। हाशिये में कोई टिप्पण नहीं दिए गए हैं। प्रति का प्रारम्भ "ॐ नमो वीतरागाय" से हुआ है। सम्पूर्ण ग्रन्थ तीन परिच्छेदों में है। प्रथम परिच्छेद में 20 कडवक हैं तथा यह परिच्छेद 21वें पृष्ठ पर समाप्त हुआ है। दूसरा परिच्छेद पृष्ठ 22 से आरम्भ होकर 27 कडवकों में पृष्ठ 50 पर अन्त हुआ है और तीसरा परिच्छेद पृष्ठ 51 से आरम्भ होकर पृष्ठ 63 पर। इस परिच्छेद में 11 कडवक हैं।

ग्रन्थ के अन्त में 63वें पृष्ठ पर निम्न प्रशस्ति लिखी है — (संवत्) 1534 वर्षे श्रावण सुदि पंचमी भौमवासरे। श्री मूलसंघे। कुंदकुंदाचार्यमाम्नाये। भट्टारक श्री सिंघकीर्ति। तस्य सिष्य श्री प्रचंडकीर्तिदेवात्। तस्य सिष्य मंडलाचार्य श्री सिंहणंदि इदं आत्म संबोध ग्रन्थ लिष्यतं कर्मक्षय निष्यत्य (सुभमस्तु (छ) छ)।

प्रस्तुत प्रशस्ति से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि संवत् 1534 के श्रावण मास शुक्ल पक्ष तिथि पंचमी दिन मंगलवार में लिखकर पूर्ण हुई थी। प्रतिलिपिकार थे भट्टारक श्री सिंहनंदि। मूलसंघ कुंदकुंदाचार्यम्नाय के भट्टारक श्री सिंघकीर्ति उनके दादा गुरु तथा श्री प्रचंडकीर्ति गुरु थे।

इस प्रति में 32 पत्र हैं। आमेर शास्त्र भण्डार में यह पाण्डुलिपि प्रविष्टि संख्या 61 से दर्ज की गयी है। यह प्रतिलिपि—आमेर शास्त्र भण्डार में इस काव्य की सर्वाधिक प्राचीन प्रति है। ग्रन्थ का सृजन कब हुआ, इसी प्रकार जिस ग्रन्थ से यह प्रतिलिपि ली गयी वह मूल ग्रन्थ कहाँ है? प्रतिलिपि कहाँ की गई आदि सम्बन्धित तथ्य अन्वेषणीय है।

"क प्रति"

फोटो कापी से इस पाण्डुलिपि का आकार 28½ × 12 सेन्टीमीटर ज्ञात होता है। लेखन कार्य 23 × 8 सेन्टीमीटर में हुआ। इसमें चारों ओर हाँसिया छोड़ा गया है। दायें बायें हाँसिये रेखांकित किये गये हैं। दो खड़ी रेखाएँ खींचने के बाद कुछ स्थान रिक्त छोड़कर उसे पुनः दो खड़ी रेखाओं से बन्द किया गया है। पंक्तियों में छूटे हुए अंश हाँशियों में दर्शाये गये हैं। पत्र में दोनों ओर लिखा गया है। प्रथम पृष्ठ में 9 और शेष इतर पृष्ठों में दस पंक्तियां तथा प्रत्येक पंक्ति में 40–41 अक्षर हैं।

यह प्रति अपूर्ण है। केवल 23 पत्र प्राप्त हुए हैं। तीसरे परिच्छेद के नौवें कड़वक का कुछ अंश तथा 10–11वें कड़वक नहीं हैं। प्रशस्ति भी प्राप्त नहीं हुई है। प्रथम परिच्छेद में 20 कड़वक हैं। यह परिच्छेद पृष्ठ 17 अ में समाप्त हुआ है। दूसरे परिच्छेद में 27 कड़वक हैं। यह पृष्ठ 17 अ से आरम्भ होकर पृष्ठ 36 में समाप्त हुआ है। इसी पृष्ठ से तीसरा परिच्छेद आरम्भ हो जाता है। पृष्ठ 43 तक इस परिच्छेद के 8 कड़वक लिखे गये हैं। अप्राप्त शेष अंश से इस प्रति के 26–27 पत्र रहे अनुमानित हैं। शब्द साम्यता स्वच्छता और शुद्धता से "क" पाण्डुलिपि और इस पाण्डुलिपि का प्रतिलिपिकार एक ही व्यक्ति ज्ञात होता है। संभवतः यह प्रतिलिपि 'क' पाण्डुलिपि से की गयी है।

इस प्रति का आरम्भ एण (मंगलं) गणेशाय नमः (:) से हुआ है। इसकी परिग्रहण प्रविष्टि संख्या 63 है।

"ग" प्रति

इस प्रति की आमेर शास्त्र भण्डार परिग्रहण संख्या 57 है। कुल पत्र संख्या 40 हैं। पत्र की एक ओर 10 पंक्तियां तथा प्रत्येक पंक्ति में 22–24 अक्षर है। प्रति पूर्ण हैं। प्राप्त फोटो प्रति से मूल प्रति का आकार नहीं बताया जा सकता है। फोटो प्रति में पत्र संख्या 18 और 39 के दो पृष्ठ ऐसे हैं जिनमें मूल प्रति का आकार ज्ञात किया जा सकता है। इन पत्रों पर मूलपत्रों के आकार की स्याही अंकित है। इस स्याही अंकित पत्र का आकार 24×12 सेन्टीमीटर है। इसमें लेखन कार्य पत्र के मध्य में हुआ है जिसका आकार 19×9 सेन्टीमीटर है। चारों ओर हांशिया छोड़ा गया है। ऊपर नीचे के हांशिये में $1\frac{1}{2}$–$1\frac{1}{2}$ सेन्टीमीटर तथा दायें-बायें हांशिये में 2–2 सेन्टीमीटर रिक्त स्थान छोड़ा गया है। इस रिक्त स्थान में लेखन कार्य के आदि अन्त में दो-दो खड़ी रेखाएँ खींचकर तथा आधा सेन्टीमीटर के आस-पास रिक्त स्थान छोड़कर पुनः दो-दो खड़ी रेखाएँ दी गई हैं।

इस प्रति के आरम्भ में श्री लिखने के पश्चात् "आरमसंबोधलिष्यते" लिखा गया है। इस प्रकार ग्रन्थ का नाम आरम्भ में ही दे दिया गया है। प्रथम परिच्छेद 20 कड़वकों में 15वें पत्र के आरम्भ में समाप्त हुआ है। द्वितीय परिच्छेद 27 कड़वकों से पत्र 33 के आरम्भ में और तृतीय परिच्छेद 11 कड़वकों से 40वें पत्र के दूसरे पृष्ठ पर समाप्त हुआ है। इसी पृष्ठ पर प्रशस्ति भी लिखी गयी है, जो निम्न प्रकार है—

संवत् 1607 वर्षे आसा(षा)ढ वदि 8 शनिवारे। रेवती नक्षत्रे। श्री सलमसाह राजौ रावणं पार्श्वनाथ चैत्यालये। श्री मु(मू)लसंघे भट्टारक श्री प्रभाचंद देवात्। तत्पट्टे भट्ट (भट्टारक) धम्मकीर्त्तिदेवात् (ततशीष्य निवाइसपूरि (छ) श्रावगः। गोधा गोत्र। संघहि (संगही) भीषा। भूमा। अर्जुन। सजन पुत्र सोनपलविरो पु. (पुत्र) 3 वस्तुराणी–1 पुरु–2 राउ–3। भतिजा लाला बहुडु। जणदासः। मनभी। श्रावक सर्वी। श्रा. (श्रावक) वीरु। श्राव. (श्रावक) सजन सवोरि पुस्तकविहरावित्। बाइसपूरि निमत्यः (षटाबितः) बहुडु पु. पुत्र) सकतु सकतदे-जनदास पुत्र कोकरा–1 होला–2 श्री छाः।

इस प्रशस्ति से निम्न अर्थ प्रतिफलित होता है कि प्रस्तुत प्रतिलिपि संवत् 1607 में की गयी थी। मूलसंघ के भट्टारक श्री प्रभाचन्द्रदेव के प्रशिष्य और प्रभाचन्द्रदेव के पट्टाधीश भट्टारक धर्मकीर्त्तिदेव के शिष्य निवाइसपूरि के संघस्थ गोधा गोत्र के श्रावक भीखा, भूमा, अर्जुन, सजन और उसके पुत्र सोनपलविर, पौत्र वस्तुराणी, पुरु, राउ भतीजे, बहुडु' जणदास मनभी श्रावक सर्वी श्रावक वीरू, श्रावक सजन सभी के तथा विहार करते हुए श्रावक भट्टारक निवाइसपूरि के निमित्त बहुडु के पुत्र सकतु और सकतदे तथा जनदास के पुत्र कोकरा और होला ने इस पुस्तक को संघटित किया (लिखकर पुस्तक का स्वरूप दिया) था।

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी द्वारा संचालित जैनविद्या संस्थान द्वारा प्रकाशित राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थसूची भाग-2 पृष्ठ 178 में क्रमांक 602 से "आत्म संबोध काव्य" का नामोल्लेख किया गया है। पाण्डुलिपि के परिचय में सम्पादक ने रचयिता का नाम पं रइधू लिखा है। पत्र संख्या 25, साईज 10×4 इंच, भाषा अपभ्रंश, विषय:- अध्यात्म, लेखन काल संवत् 1552 ज्येष्ठ वदी 13, पूर्ण एवं सामान्य शुद्ध तथा वेष्टन संख्या 65 का भी उल्लेख किया है।

एक इतर प्रति द्वितीय भाग के ही पृष्ठ 371 पर क्रमांक 2529, गुटका नम्बर 224 से उल्लिखित हुई है। इसके रचयिता भी पं. रइधू तथा लेखन काल संवत् 1534 बताया गया है। सम्भवत: आदर्श प्रति यही है।

राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग तृतीय में पृष्ठ 39 पर क्रमांक 251 से रइधूकृत "आत्म सम्बोधन काव्य" का नामोल्लेख किया गया है। पत्र संख्या 28, साइज 11×4 इंच, भाषा-अपभ्रंश, विषय-अध्यात्म, लेखन काल संवत् 1619 द्वितीय श्रावण वदी 9 प्रतिलिपि स्थल-अलवर, प्रति पूर्ण, वेष्टन संख्या 24 बताई गयी है।

आदर्श प्रति

इस प्रकार आमेर शास्त्र भण्डार में प्रस्तुत काव्य की क्रमश: संवत् 1534, 1552, 1607, 1619 और एक काल रहित कुल पाँच प्रतियां होने के संकेत मिलते हैं। इसमें सम्पादन हेतु संवत् 1534, 1607 तथा तिथि विहीन अपूर्ण प्रति सहित तीन फोटो प्रतियाँ प्राप्त हुई। इनमें सर्वाधिक प्राचीन संवत् 1534 की "क" प्रति को आदर्श प्रति के रूप में स्वीकार किया गया है।

अन्य संकेत

डॉ. राजाराम जैन के शोध प्रबन्ध—"रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन" के आमुख पृष्ठ पांच में "अप्प-संबोह-कव्व" की एक प्रति स्व. पं. परमानन्दी जी शास्त्री के पास होने का संकेत किया गया है। डॉ. जैन को शोध प्रबन्ध के लिए शास्त्री जी से इस काव्य की प्रति लिपि ही प्राप्त हुई थी। प्राचीन हस्तलिखित मूलग्रन्थ उन्हें देखने भी नहीं मिल सका।

ग्रन्थकर्ता

आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर से प्राप्त तीन फोटो प्रतियों का सूक्ष्म अध्ययन किया गया। ग्रन्थकर्ता का नाम किसी भी प्रतिलिपि में उपलब्ध नहीं है, परन्तु "राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ" भाग द्वितीय के पृष्ठ 178 में क्रमांक 602 से उल्लिखित इस काव्य को रइधूकृत बताया गया है। इसी भाग के पृष्ठ 3 1 में और ग्रन्थसूची भाग तृतीय के पृष्ठ 39 में भी इसी कथन की पुनरावृत्ति हुई है।

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्रीमहावीर जी जयपुर द्वारा प्रकाशित "प्रशस्ति संग्रह" के पृष्ठ 85 में रचनाकार रइधू ही बताए गए हैं। सूचियों और प्रशस्ति संग्रह के सम्पादक डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल ने ऐसा लिखने में लिए गए आधार का उल्लेख भी नहीं किया है।

डॉ. राजाराम जैन ने अपने शोध-प्रबन्ध—"रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन" के पृष्ठ 49 में रइधूकृत 37 रचनाओं का नामोल्लेख किया है। वे हैं—

1. मेहेसरचरिउ (अपरनाम आदिपुराण)
2. णेमिणाहचरिउ (अपरनाम रिट्ठणेमिचरिउ)
3. पासणाहचरिउ
4. सम्मइजिणचरिउ
5. तिसट्ठिमहापुरिसचरिउ
6. महापुराण
7. बलहद्दचरिउ
8. हरिवंशपुराण
9. श्रीपालचरित
10. प्रद्युम्नचरित
11. वृत्तसार
12. कारणगुणषोडशी
13. दशलक्षण-जयमाला
14. रत्नत्रयी
15. षड्धर्मोपदेशमाला
16. भविष्यदत्तचरित्त
17. करकंडचरित्त
18. आत्म-सम्बोध काव्य
19. उपदेशरत्नमाला
20. जिनंधरचरित
21. पुण्याश्रवकथा
22. सम्यक्त्वगुणनिधानकाव्य
23. सम्यक्त्वगुणारोहण काव्य

24. षोडसकारण जयमाला
25. बारह भावना (हिन्दी)
26. सम्बोध पंचासिका
27. धन्यकुमारचरित
28. सिद्धान्तार्थ सार
29. बृहत्सिद्धचक्रपूजा (संस्कृत)
30. सम्यक्त्वभावना
31. जसहरचरिउ
32. जीवंधरचरित
33. कोमुइकहापबंधु
34. सुक्कोसलचरिउ
35. सुदंसणचरिउ
36. सिद्धचक्कमाहप्प
37. अणथमिउकहा

आगे डॉ जैन ने पृष्ठ 50 में "कुछ संदिग्ध रचनाएँ" शीर्षक देकर लिखा है—'अप्प-संबोह-कव्व" (अपभ्रंश), संबोहपंचासिका (प्राकृत), और बारह भावना (हिन्दी) ये तीन ऐसी रचनाएँ हैं जिनके मूल में लेखक का कहीं भी नामोल्लेख नहीं हुआ। हाँ, लिपिकारों की अन्त्य-वर्ती पुष्पिकाओं में 'रइधूकृत' का उल्लेख अवश्य मिलता है। उसी आधार पर उन रचनाओं को रइधूकृत मान लिया गया है। भाषा और शैली को देखकर वे रइधूकृत प्रतीत भी होती हैं। यहां डॉ. जैन का पूर्व कथन उल्लेखनीय है कि "अप्प संबोह कव्व" की प्रतिलिपि मात्र ही उन्हें स्व. पं. परमानन्दशास्त्री जी द्वारा प्रेषित की गयी थी। इस प्रतिलिपि में डॉ जैन को रइधूकृत शब्द कहीं लिखा मिला हो, यह बात अलग है किन्तु मुझे उपलब्ध तीन फोटो प्रतियों में दो में पुष्पिकाएँ मिली हैं जिनमें "रइधूकृत" शब्द कहीं भी लिखा दिखाई नहीं दिया।

"संबोहपंचासिया और वय कहा" (जैन अनुशीलन केन्द्र, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर ई. 1985 प्रकाशन) के सम्पादक डॉ. भागचन्द जैन "भास्कर" ने अपनी प्रस्तावना पृष्ठ 1-2 में ग्रन्थकर्त्ता के नाम पर ऊहापोह करते हुए लिखा है कि उन्हें इस ग्रन्थ की जो प्रतियां मिली हैं उनमें रइधू का कहीं भी नामोल्लेख नहीं है, परन्तु राजस्थान जैन ग्रन्थ भण्डार सूची भाग तीन, पृष्ठ 36-37 पर इसे रइधू के नाम पर अंकित किया गया है। डॉ. भास्कर के इस उल्लेख से यही अर्थ प्रतिफलित होता है कि अप्प संबोह कव्व और संबोह-पंचासिया दोनों रचनाएँ सम्भवतः रइधूकृत नहीं हैं।

डॉ. राजाराम जैन ने "रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन के पृष्ठ 67 में महाकवि रइधू की लेखन प्रवृत्ति पर प्रकाश डालते हुए लिखा कि वे कभी-कभी पर्यायवाची नामों का उल्लेख कर देते हैं जैसे—रविपहुअर्ककीर्त्ति (पास. 3/11/1), हयसेणु–अश्वसेन (पास. 3/1/4, 3/2/14), सत्तुदमन–अरिदमन (सिरिवाल. 3/2), हरिन्दहु–मृगरथ (सिरिवाल. 2/1), सुरसेन–देवसेन (मेहेसर 1/9), कंजकित्ति–कमलकीर्त्ति (अरिट्ठ. अन्त्य प्रशस्ति), रामचरित–पउमचरिउ अथवा बलहद्दचरिउ आदि।

"संबोहपंचासिया" और अप्प संबोह कव्व" में ऐसे पर्यायवाची नाम कहीं दिखाई नहीं देते। अतः लेखन-प्रवृत्ति से भी ये दोनों ग्रन्थ रइधू प्रणीत नहीं होते। इस सन्दर्भ में और शोध-खोज अपेक्षित है।

रचना परिचय

डॉ. राजाराम जैन के अनुसार प्रबन्ध-पद्धति पर निर्मित यह एक आध्यात्मिक रचना है[1]। पत्ता और पद्धड़िया छन्दों में यह रचना तीन परिच्छेदों में समाप्त हुई है। कुल कड़वकों की संख्या 58 और यमक संख्या 589 है। परिच्छेद के अनुसार कड़वक और यमक संख्या निम्न प्रकार है—

परिच्छेद संख्या	कड़वक संख्या	यमक संख्या
प्रथम	1	12
	2	10
	3	9
	4	10
	5	10
	6	10
	7	10
	8	10
	9	10
	10	10
	11	10
	12	10
	13	10

परिच्छेद संख्या	कड़वक संख्या	यमक संख्या
	14	10
	15	10
	16	10
	17	11
	18	11
	19	10
	20	10
		203
द्वितीय	1	10
	2	10
	3	9
	4	10
	5	10
	6	11
	7	10
	8	10
	9	10
	10	11
	11	10
	12	10
	13	12
	14	10
	15	10
	16	10
	17	11

परिच्छेद संख्या	कड़वक संख्या	यमक-संख्या
	18	10
	19	10
	20	10
	21	11
	22	10
	23	10
	24	9
	25	11
	26	10
	27	10
		275
तृतीय	1	11
	2	10
	3	10
	4	10
	5	10
	6	10
	7	10
	8	10
	9	11
	10	10
	11	9
		111

पाठ-सम्पादन पद्धति

1. सम्पादन के लिए मूलरूप से "क" पाण्डुलिपि को आदर्श बनाया गया है। जहां कहीं आदर्श प्रति के शब्द अशुद्ध समझ में आये हैं, उन शब्दों के स्थान में "ख" एवं "ग" पाण्डुलिपियों से शुद्ध शब्द ले लिये गये हैं। पाठान्तर टिप्पणियों में उन पाण्डुलिपियों का उल्लेख कर दिया गया है जिनके शब्द मूल में नहीं लिए गए हैं। इस प्रकार "क" आदर्श प्रति को पूरा और स्पष्ट करने के लिए इतर दोनो पाण्डुलिपियों का सहारा लिया गया है। सम्पादन तीनों प्रतियों के माध्यम से पूरा हुआ है। पाण्डुलिपियों के के अध्ययन से यह तथ्य फलित होता है कि "ख" प्रति "क" पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि है, तथा "ग" स्वतन्त्र पाण्डुलिपि है।

2. "न" के स्थान में "ण" कर दिया गया है। "न" का प्रयोग "ग" पाण्डुलिपि में अधिक हुआ है।

3. कहीं कहीं यमक का पूरा एक चरण आदर्श प्रति का अनुपयुक्त प्रतीत होने से उसके स्थान में 'ख' और 'ग' पाण्डुलिपियों का चरण लिया गया है। जैसे—"क" प्रति- पावइ अणंत णिव्वाण सुक्खु खग—प्रतिपरिहरि वि जम्मजरमरण दुक्खु / दुक्खु (1/4/10)।

4. चरण के अन्त्य स्वरों की समानता का सम्पादन में ध्यान रखा गया है। इसके लिए आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी किए गए हैं। किन्तु मौलिक शब्द पाण्डुलिपियों का नामोल्लेख करते हुए पाठान्तर में दर्शाये गये हैं। जैसे 1/4/10 के द्वितीय चरण मे अन्तिम शब्द सुक्खु सम्पादित हुआ है जबकि "क" प्रति में मोखु और "ग" प्रति में सोक्खु शब्द मिलता है।

5. एक पाण्डुलिपि में जो अंश उपलब्ध है यदि वह अंश अन्य पाण्डुलिपियों में अनुपलब्ध है तो जिस पाण्डुलिपि में वह अनुपलब्ध है उसका उल्लेख पाठान्तर में कर दिया है। उदाहरणार्थ देखें 2/4/8।

6. यदि "क" आदर्श प्रति में लिपिकार की असावधानी से वर्ण आगे पीछे लिखे गये हैं तो अन्य प्रतियों से मिलान करके शुद्ध सम्पादित किये गये हैं। उदाहरणार्थ—"क" आदर्श प्रति में "मरण" (2/5/5) शब्द मिलता है जबकि 'ख' और 'ग' प्रतियों में "मरण" के स्थान में "रमणु" शब्द अंकित मिला है।

7. 'व' को 'ब'। "क" आदर्श प्रति में जहां कहीं 'व' का प्रयोग मिला है उसे 'ब' कर दिया गया है। द्रष्टव्य है "क" प्रति 2/6/6।

8. "क" आदर्श प्रति में छूटे हुए अंश इतर पाण्डुलिपियों से लेकर संपादित किए गए हैं। द्रष्टव्य हैं—2/7/1-2, 7-8 अंश।

हिन्दी अनुवाद

ग्रन्थ से जन सामान्य लाभान्वित हो इसके लिए मूलपाठ के साथ उसका हिन्दी अनुवाद होना आवश्यक समझा गया है। अनुवाद में मूलानुरागी दृष्टि अधिक रही है किन्तु इसका सर्वथा पालन नहीं हो सका है। अर्थ स्पष्ट करने के लिए जहां कहीं आवश्यक हुआ ऐसा वाक्य विन्यास भी दिया गया है जिसका मूल से कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसा अंश कोष्ठकों के भीतर दर्शाया गया है। कहीं कहीं मूल में प्रयुक्त विभक्तियों के अनुसार भी अर्थ नहीं किया जा सका है। जिस अंश का कोश की सहायता लेने पर भी अर्थ स्पष्ट नहीं हो सका है, उसका भावार्थ दिया गया है। इस प्रकार मूलानुगामी दृष्टि रखते हुए सर्वत्र विषय को स्पष्ट करने का यत्न किया गया है। इस सन्दर्भ में आचार्य अमितगति की भावना के अनुसार मेरी भी यही भावना है कि—

यदर्थमात्रापदवाक्यहीनं मया प्रमादाद्यपि किंचनोक्तम्।
तन्मेक्षमित्वा विदधातु देवी सरस्वती केवल बोध लब्धिम्॥

विषय वस्तु

जैनधर्म में चौबीस तीर्थंकर माने गये हैं। इसमें पार्श्वनाथ तेईसवें और वर्द्धमान चौबीसवें तीर्थंकर हैं। तीर्थंकर पार्श्वनाथ के समय में चातुर्यामिक धर्म था। उत्तराध्ययन सूत्र के तेईसवें अध्ययन में केशी गौतम संवाद के अन्तर्गत बारहवें सूत्र में कहा गया है कि—"जो चातुर्याम धर्म है, उसका प्रतिपादन महामुनि पार्श्व ने और यह जो पंच शिक्षात्मक धर्म है, उसका प्रतिपादन महामुनि वर्द्धमान ने किया है।

स्थानांग सूत्र में (सूत्र 266) चार यामों का निरूपण भी किया गया है—

मज्झिमगा बावीसं अरहंता भगवंता चाउज्जामं धम्मं पण्णवेंति, तं सव्वातो पाणातिवायाओ वेरमणं एवं मुसावायाओ वेरमणं, सव्वातो अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं "अर्थात् अजितनाथ से पार्श्वनाथ पर्यन्त मध्यवर्ती तीर्थंकरों ने जिस चातुर्याम धर्म का निरूपण किया, वह इस प्रकार है—(1) सर्वप्राणातिपातविरमणं, (2) सर्वमृषावादविरमणं, (3) सर्वअदत्तादानविरमणं और (4) सर्वबहिद्धादानविरमणं।

तीर्थंकर महावीर ने सर्वबहिद्धादानविरमणं में अन्तर्भूत ब्रह्मचर्य को उससे पृथक करके उसे एक स्वतन्त्र याम की संज्ञा दी। इस प्रकार उन्होंने पंच याम धर्म का व्याख्यान किया।[1]

---

1. रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ. 424-425।

प्रस्तुत काव्य में पांचों यामों की अणुव्रतों के रूप में गहराई उद्घाटित की गई है। अणुव्रतों का सम्बन्ध गृहस्थों से होता है। अतः कहा जा सकता है कि यह काव्य गृहस्थों के आत्मोद्धार के लिए लिखा गया था।

इसके प्रथम परिच्छेद में आरम्भिक तीन अणुव्रतों की व्याख्या है। अहिंसाणुव्रत-प्रथम बारह कड़वकों में व्याख्यायित हुआ है। सत्याणुव्रत—तेरहवें कड़वक से आरम्भ होकर सोलहवें कड़वक के पांचवें यमक में और अचौर्याणुव्रत सोलहवें कड़वक के छठे यमक से आरम्भ होकर बीसवें कड़वक में समाप्त हुआ है।

कवि ने आरम्भ में मंगल स्वरूप वीतरागता और वर्द्धमान जिनेन्द्र को नमन किया है। सम्पूर्ण काव्य में उसने स्वयं को सम्बोधित किया है।

प्रस्तुत काव्य में अपना उद्धार अपने द्वारा होने की अभिव्यक्ति हुई है। (1/3/1) इसके लिए भव-भ्रमण से मुक्ति आवश्यक है जो जिनेन्द्र-शासन के ग्रहण और जीवादि पदार्थों के श्रद्धान पर आश्रित है (1/3/2–3)। यहां तत्व ग्रहण और श्रद्धान का निरूपण करना प्रकारान्तर से सम्यक्त्व-ग्रहण पर बल देना है क्योंकि आत्मोद्धार सम्यक्त्व के बिना सम्भव नहीं।

वीतरागी देव, शास्त्र और गुरु पर श्रद्धा सम्यक्त्व का व्यावहारिक कारण है। कवि ने अर्हन्त जिनेश्वर देव को छोड़ इतर देवों को कुदेव की संज्ञा दी है तथा उनके उपासकों को दुःख-भाजन बताया है। कवि ने निर्भीकता के साथ यहां तक कह दिया है कि जो जैसे देव की आराधना करता है वह वैसा ही होता है—जो पुज्जइ ढोरु सो होइ ढोरु, सप्पहो पुज्जंतहं सप्पु होइ आदि (1–4)।

कवि के इस कथन का तात्पर्य है कि वीतरागता के बिना आत्म-उद्धार नहीं और वीतरागता वीतरागी अर्हन्त देव की उपासना से ही सम्भव है। रागी-मोही, द्वेषी देवों से वीतरागता सम्भव नहीं। अतः ऐसे देवों की उपासना त्याज्य है।

कवि ने इन्द्रिय-विषयों, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, ब्रह्मचर्यविहीन, दीन को गुरु संज्ञा नहीं दी (1/5/1–4) उन्होंने क्रोध, मान, माया, लोभ कषायों से रहित, जीवदयालु, सत्यभाषी, बिना दिये नहीं लेनेवाले, इन्द्रियजयी, निस्परिग्रही, परीषहजयी, राग-द्वेष विहीन, दर्शन-ज्ञान-चारित्रवान दिगम्बर और आर्तरौद्रध्यान से रहित को गुरु कहा गया है तथा उसी के चरण पूज्य बताये हैं (1/5/5–10, 1/5)।

शास्त्र से कवि का तात्पर्य उस वाणी से है जो केवली जिनेन्द्र प्रणीत है। गणधर ने जिसका विस्तार किया, श्रुतकेवली मुनियों ने परिपाटी से ग्रहण किया और निर्ग्रंथ मुनियों को कहा। आगम यही है। कुगुरु भाषित आगम कुआगम बताया है (1/7/1–4)। इस प्रकार

कवि ने परम जिनदेव, परम निर्ग्रन्थ गुरु परम आगम और अहिंसामूलक दशलक्षण धर्म को सम्यक्त्व-रत्न के कारण कहे हैं (1/7/6–7)। कवि का विचार है कि श्रावक सर्वप्रथम अहिंसाणुव्रत का पालन करे। इसके लिए पंच उदम्बर फल तथा मद्य, मांस, मधु भक्षण का त्याग आवश्यक है। ये ही श्रावक के अष्टमूलगुण हैं (1/7/8-10)। कषायों को हिंसा का कारण मत बनने दो। कषाय वश जीव घात मत करो (1/8/1–10)।

जीव दो प्रकार के हैं—त्रस और स्थावर। इनमें एकेन्द्रिय स्थावर हैं और शेष दो से पांच इन्द्रिय जीव त्रस। अहिंसाणुव्रती स्थावर का भी अनावश्यक घात नहीं करता। हिंसा कार्य में उत्साहित नहीं होता, क्रूर भाव नहीं रखता। वह तो सरल चित्त होता है। सभी जीवों का हित चाहता है। छेदन, भेदन, बन्धन, दमन जैसे कार्य नहीं करता। जीव देखकर ही भूमि पर पैर रखता है (1/9/1-10)। दूसरों के द्वारा सताए जाने पर क्रोध न करके क्षमा धारण करे और विचारे कि पूर्वोपार्जित यह शुभाशुभ अपने ही कर्मों का फल है (1/10/9–10)। क्षमा जीवदया का मूलाधार है (1/11/3)।

अहिंसाणुव्रती वैर नहीं रखता। वह अनुपकारी का भी उपकार करता है (1/11/1)। क्रोधानल से संतप्त मनुष्य क्षमारूपी जल से ही शीतल (शान्त) होता है (1/11/10)।

कवि के अनुसार अहिंसा देशव्रती मन, वचन, काय से दया में तल्लीन रहता है। वह मारने-पीटने/सताने की बात नहीं करता। बहु जीवघात का कारण होने से वह रात्रिभोजन नहीं करता। मोटे कपडे से जल छानकर पीता है और कपड़े को जल से पुनः धो लेता है। वह जुआ खेलना, वेश्या-रमण, और शिकार जैसे व्यसनों का त्यागी होता है। मक्खन कभी नहीं खाता। पुष्प और कंद का सेवन नहीं करता (1/12/1–10)।

सत्याणुव्रत

कवि की उल्लेखनीय मान्यता है कि जो अपने को कषायों के लिए समर्पित नहीं करता है, वह कभी भी असत्य नहीं बोलता (1/13/5)। असत्य कषायों वश ही बोला जाता है (1/13/4)। सत्य परिभाषित करते हुए कवि ने पर पीड़ाकारी सत्य बोलने का निषेध किया है (1/13/6)। उनकी दृष्टि में सर्वजीव-हितैषी, प्रिय श्रवण-सुखद वाणी बोलना सत्य भाषण है। इसमें कटुता, कर्कशता, निष्ठुरता और भयोत्पादन के लिए स्थान नहीं रहता (1/13)।

जो जैसा सुना है वैसा कहना सत्य है - इस सांसारिक मान्यता को स्पष्ट करते हुए कवि ने लिखा है कि जो जैसा कानों से सुना जावे वह वैसा ही कभी भी नहीं कहा जावे (1/1 /3)।

अचौर्याणुव्रत

इस व्रत के सम्बन्ध में कहा गया है कि "अण दिण्णउ सयलु वि वज्जिज्जइ" (1/16/10) अर्थात् बिना दिया हुआ सब कुछ त्यागा जावे। कवि ने यह भी कहा है कि अचौर्याणुव्रत में वह

भी त्याज्य है जो दूसरों के लिए प्रिय हो। इसके अन्तर्गत-धन-धान्य, मणि, रत्न, द्विपद, चतुष्पद, आदि दूसरों को जो प्रिय है, उसे तृण सम तुच्छ मानकर नहीं चुराया जावे (1-16)।

चौर्यवृत्ति का मूल कारण कवि ने लोभ-कषाय निरूपित की है। लोभ-वश-साझेदार, इष्ट मित्र, भाई, पुत्र, पिता को ठगकर धन संचय करना चोरी है। अपना दोष दूसरों पर आरोपित करना, अपनी हानि दूसरों के सिर थोपना, अपना राजदण्ड दूसरों के सिर पर स्थापित करना आदि में कवि ने चोरी का दोष लगना बताया है (1/17/1-11)। धरोहर रखनेवाले की यदि मृत्यु हो जाती है तो वह धन उसके परिजन को दे देवें। स्वयं न रखे (1/18/8-10)। व्रतों की गहराई में भी कवि ने गोता लगाया है। उन्होंने लौकिक विषयों पर ऊहा पोह करते हुए ऋणी और साहूकार के सम्बन्धों को भी इस व्रत में लिया है। कवि की मान्यता है कि ऋणी को सताकर धन वसूलने में अचौर्यव्रत नहीं। उसे सताया नहीं जावे। कवि के मार्मिक शब्द द्रष्टव्य हैं—

जइ लहएउ कासु विपास धणु। मंगियउ सुहेण ण लहइ पुणु।
तउ वंधिवि लंघाइवि धणउ। णवि लिज्जइ जइ विहु अप्पाणउ॥ (1/18/1-2)

जो साहूकार ऋणी को सताकर अपना धन नहीं वसूलता, क्षमा कर देता है, वह देवोपम लक्ष्मी पाता है। जो इसके विपरीत सताकर अपना धन वसूलता है क्षमा नहीं करता, वह भव-भव में निर्धन होकर दुःखी होता है—

पीडिवि ण लेइ तहो खमइ जइ। तो होइ साहु सुर लच्छिमइ।
अह लेइ विराहिवि खमइ ण वि। तउ दुक्खिउ णिद्धणु भवि जि भवि॥ (1/18/5-6)

प्रतीत होता है कवि ऋणी की मानसिक स्थिति से परिचित था। ऋणी की आत्मिक संतप्तता, उद्विग्नता, मानसिक भय दीनता आदि देखकर कवि हृदय का द्रवित हो जाना स्वाभाविक है। ऋणी के प्रति साहूकार को सम्बोधते हुए कवि ने अपनी संवेदना निम्न प्रकार व्यक्त की है—

रिण संबंधे एउ करंतह। पाउ ण लग्गइ पंजलि चित्तहं।
पाउ हीणु जहि कहि उप्पज्जइ। तहि रिणच्छेयण खमु संपज्जइ।
रिणु मोडिव्वइं जसु मइं वड्ढइ। सो भवि-भवि दुक्खहि आवड्ढइ।

अर्थात् ऋण के सम्बन्ध में चित्त की सरलता होनी चाहिए। इससे पाप नहीं लगता है। पाप न लगने से जहां कहीं (अच्छी गति में) भी उत्पन्न हो जाता है। अतः क्षमापूर्वक ऋण-छेदन किया जावे। जिसकी बुद्धि ऋण परिवर्तन में लगती है वह दुःखपूर्वक परिभ्रमण करता है।

इस प्रकार ऋणी और साहूकार के सम्बन्धों को इस व्रत में सम्मिलित करके उनके पारस्परिक सम्बन्धों में माधुर्य उत्पन्न करने में कवि ने सूझ-बूझ का परिचय दिया है।

इससे प्रतीत होता है कवि अपने समय के अच्छे समाज सुधारक थे। बुराइयों को निर्भीकतापूर्वक कहते हुए उन्हें संकोच नहीं होता था। धार्मिक कृत्यों में वे प्रदर्शन नहीं चाहते थे। वे मूल के पारखी थे। वस्तु की यथार्थता को प्रकट करना उनका लक्ष्य रहा प्रतीत होता है। स्त्री-पुरुष दोनों उनकी दृष्टि में समान थे। ब्रह्मचर्याणुव्रत वर्णन इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है।

ब्रह्मचर्याणव्रत

अब तक जितना भी जैन साहित्य इस व्रत पर लिखा गया है उसमें नारी ही प्रधान रूप से विषय-वस्तु बनायी गयी है किन्तु प्रस्तुत काव्य में नर और नारी दोनों इस व्रत के प्रसंग में उल्लिखित हुए हैं।

कवि ने रति-प्रसंग-निवृत्ति को ब्रह्मचर्य तथा दिवा मैथुन-त्याग को चौथा अणुव्रत कहा है (2/1/2-3)। कवि की मान्यता है—स्त्री हो चाहे पुरुष, जो व्रत भंग करके रति-रमण करते हैं वे बहु संसार भ्रमण करते हैं (2/1/5-6)।

सर्वप्रथम पुरुषों को सम्बोधित करते हुए कवि ने उन्हें स्त्रियों के वचन श्रवण, स्त्री-निरीक्षण, स्त्री-सौन्दर्य-चिन्तन, सह नमन, एक शय्या शयन, आसन, शारीरिक संघर्षण आदि स्त्री प्रसंग त्याज्य बताये हैं (2/2/1-10)।

पुरुष अपने में स्थिर रहे। ब्रह्मचर्य से विचलित न हो। इसके लिए कवि ने कहा कि पुरुष – वृद्धा स्त्री को माता के समान, युवती को बहिन के समान और अवस्था में छोटी स्त्री को पुत्री के समान समझे (2/3/3-4)। इतना ही नहीं कवि ने लौकिक रिश्तों पर भी विचार किया। उन्होंने अपने घर की अनुबन्धित दासियों, सालियों और सरहाजों के साथ क्रीड़ा करने में भी अविवेक से व्रत भंग होने की आशंका उत्पन्न करके ऐसा करना अनुचित बताया है (2/3/5-6)। कवि के अनुसार—

यदि सम्पूर्ण मैथुन निवृत्ति सम्भव न हो तो धीरे-धीरे व्रत आचरे। पहले सभी पर स्त्रियों से निवृत्ति करे (2/7/7-10)। संसार में ब्रह्मचर्य के बिना अन्य कोई शरण नहीं है (2/8/2)। यौवन में अगर व्रताचरण नहीं किया तो बुढ़ापे में अवश्य अपनी निन्दा करते हुए शारीरिक मैथुन का नियम लेवे और मन, वचन, काय तीनों प्रकार से उसे निर्वाहे (2/10/4-7)।

पुरुषों के व्रत की चर्चा के पश्चात् कवि ने स्त्रियों को समझाया है कि पुरुषों के समान वे भी इस व्रत को पालें। जो स्त्रियाँ यह व्रत पालती हैं वे मरकर स्वर्ग में देव होती हैं। स्त्रीलिंग छेदकर वे पुरुष तन पाती तथा उससे तप करके निर्वाण-सुख पाती हैं। यह बात नर-नारी को शिव सुखकारी है (2/12/7-10)।

कवि ने नारी के ऐसे व्रतों का भी उल्लेख किया है जो शील साधना में उन्हे बाधक होते हैं। ब्रह्मचर्य साधना में लीन नारियों को कवि ने गंगा पूजन, गौरी पूजन पशु पूजन, सूर्य-चन्द्र ग्रहण पूजन कुल-देवी-देवता पूजन आदि को त्याज बताकर ऐसे व्रत रखने का निषेध किया है (2/13/2-11)।

कवि ने स्त्रियों की भोग-लिप्सा के सम्बन्ध में लिखा है कि जो स्त्रियाँ पति संग रस की लोभी होती हैं वे मरकर भव-भव में स्त्रियां ही होती हैं और नये नये पति पाती हैं (2/14/2-3)। उनका स्त्रीलिंग ज्यों का त्यों बना रहता है, किन्तु उन स्त्रियों का स्त्रीलिंग छिद जाता है जो मिथ्या देवी-देवताओं को नहीं पूजती। जो पुत्र के न होने पर मन में शोक नहीं करती और न अन्य पुरुषों से सम्पर्क करती हैं तथा न अन्यान्य विधानों का उपयोग करती हैं (2/14/7-10)।

इस व्रत का निर्वाह करने के लिए कवि ने व्रती के आचार-विचार पर चिन्तन किया है। उनके अनुसार ऐसी-व्रती स्त्री कुगुरु कुदेवों को त्यागकर जिनेन्द्र की अर्चना, वन्दना करती है। जिनवाणी का श्रवण करती है। मद्य, मांस, मधु, पंच उदम्बर फल, मक्खन संधान, सूरन नहीं खाती। सूर्यास्त के पूर्व भोजन करती है। जल छानकर पीती है। जीवानी जीव वर्ग मे रखती हैं। कन्दमूल भी नहीं खाती। प्रिय मधुर वचन बोलने का उसका स्वभाव होता है। पर द्रव्य-हरण का वह नियम रखती है (2/15/1-10)।

पर पुरुषों में बालक को पुत्र के समान, युवा पुरुष को भाई के समान और वृद्ध पुरुष को पिता के समान देखती है (2/16/1-2)।

परित्यक्ता नारी की जीवन चर्या का भी कवि ने सुन्दर अंकन किया है। कवि के अनुसार ऐसी नारी अपने ऊपर आयी इस विपत्ति को अपने पूर्वोपार्जित कर्मों का फल जाने। दोषारोपण किये जाने, परिजनों द्वारा त्यागे जाने अथवा सताये जाने पर भी वह अपने शील की रक्षा करे। जिनेन्द्र-मार्ग नहीं त्यागे (2/18/1-10)।

कवि के समय में सम्भवतः सती प्रथा थी। कवि उसका विरोधी रहा है। अपना विरोध प्रस्तुत काव्य में भी उन्होंने प्रकट किया है। उनका कहना है कि पति के मरने पर कोई भी स्त्री पति के साथ नहीं मरे। उदरपूर्ति के भय से भी निज घात नहीं करे। पति से पहले मैं ही क्यों नहीं मरी? मैं पति को खा गयी आदि विचार भी मन में नहीं लावे। मृत पति ही मेरा आगामी पति हो—ऐसी इच्छा करना ठीक नहीं। यदि पति का कोई पुत्र-पुत्री है तो उसका पालन करे तथा सदैव जिनेन्द्र चरण-कमलों का स्मरण करे (2/19/1-9)।

जिन स्त्रियों का पति पाप-फल से उनकी बाल्यावस्था में ही मर जाता है, वे विधवा स्त्रियां साध्वियों के समान जियें। शृंगार और सरस भोजन में रुचि न लें। मन्द कषाय से दृढतापूर्वक शीलव्रत पालें। श्वेत वस्त्र पहनें। दातौन, पान चर्वण, द्यूत क्रीड़ा, कथा-कथन-श्रवण में

दिन व्यतीत करना, घी-दूध का सेवन, थोड़ा दिन रहने पर सिर धोना, दीवाल पर चढ़कर दिशाएं देखना, बाहर आकर मार्ग में कौतूहल देखना, उच्च स्वर से दूसरों को कोसना, घर की वधू अथवा पुत्री से रूसना आदि क्रियाएं नहीं करें, त्याग दे (2/20/1–10)।

निष्काम पराये घर में जाना, रात्रि में अकेले बाहर जाना, रास्ते में वेगपूर्वक या मन्द गति से जाना, स्वामी के पास अधिक रहना भी कवि ने अनुचित बताया है (2/21/1–3)। ऐसी स्त्री का कर्तव्य है कि वह धीरे-धीरे मन का संकोच और इन्द्रियों का संवरण करे तथा जिनेन्द्र-मार्ग में स्थिर रहे (2/22/1–9)। पंच उदम्बर फल, मद्य, मांस, मधु, अनछना जल, सूरन, नवनीत, रात्रि भोजन तथा अज्ञात फल भक्षण त्याग दे (2/22)।

कवि ने विधवा नारी की सामान्य चर्या पर भी विचार किया है। उसने ऐसी नारी को सभी सन्धान कन्दमूल, पांचों प्रकार की साग-सब्जियां, फूल आदि के भक्षण का निषेध किया है। इन्द्रिय रस लोलुपता को वर्जनीय कहा। जीव दया करे, अनहितकारी असत्य नहीं बोले। बिना दी वस्तु नहीं लेवे। सन्तोषी रहे, बहु भ्रमण न करे, गुरु की विनय करे। दिन में सोवे नहीं। रिश्तेदार के मरने पर खेद नहीं करे (2/23/1–10)।

रात्रि के अन्तिम पहर में जनता के पहले उठकर जिनेन्द्र भक्ति स्तुति पढ़े। निरन्तराय एक बार भोजन करे। तीनों संध्याओं में जिनेन्द्र वन्दना करे (2/24/1–9)। अष्टमी, चतुर्दशी, ऋषि-पंचमी, मोक्ष सप्तमी, मुक्तावली, सुगन्धदशमी, समाधि दशमी और चन्द्रायण व्रत करे तथा व्रताचरण करते हुए समाधिपूर्वक मरे। ऐसी नारी देव होती है (2/25/1–8)

अज्ञान दशा में होनेवाले पापों की निवृत्ति के लिए कवि ने अपने पाप कर्मों की निन्दा करते हुए दुष्कर्मों से मन संवरण करने को कहा है। कवि का यह भी कथन है कि पश्चाताप से निर्मलता का संचार होता है। अतः शील मत छेदो। पाप छेदन करके उसे पुनः प्राप्त करो (2/26/1–10)।

तीसरे परिच्छेद में परिग्रहपरिमाणव्रत प्रतिपादित किया गया है। कवि ने इसके आरम्भ में बता दिया कि जिन कर्मों से जीव संसार-भ्रमण करता है तथा दुःख भोगता है, वे कर्म आरम्भ-भार से उत्पन्न होते हैं। परिग्रह समस्त आरम्भ की मूल है। अतः परिग्रह त्यागो। जो पूर्णतः नहीं त्याग सकते हैं वे अणुव्रत के रूप में इसका पालन करें (3/1/.–5)। यह व्रत लोभ कषाय के उपशमन से होता है (2/2/10)। व्रत-निर्वहन के लिए दान-पूजा, शील, उपवास आवश्यक हेतु हैं (3/3/4)। धन की कामना बनी रहने पर इस अणुव्रत की साधना नहीं होती। धन तो पूर्वोपार्जित कर्मों के फल से उत्पन्न होता है। अतः सन्तोष रखना चाहिए (13/4/1, 4-5)। धन का विनाश होने पर व्रत को दोष नहीं देवे। व्रत—दुःख गलाते हैं और शिव-सुख लाते हैं। धन का विनाश

पूर्वोपार्जित कर्मों के फल से होता है, व्रतों से नहीं। मेघ वृष्टि से आग नहीं जलती, शान्त होती है (3/5/3, 7-8)।

कभी-कभी विचार आते हैं कि मेरे यदि धन होता तो उसकी संख्या का परिमाण करता। जब है ही नहीं तो परिमाण की फिर क्या आवश्यकता है? इस सम्बन्ध में कवि का अभिमत है कि ऐसा विचार करके व्रत ग्रहण करने में ढील मत करो क्योंकि सुख दृढ़ व्रत बिना नहीं होता है (3/6, 3-6)। व्रतों की दृढ़ता से लोभ क्षय होता है। यथार्थ में व्रत लोभ के क्षय में ही होते हैं। जिसके बहु लोभ होता है उसके यह व्रत नहीं होता (3/6/11)।

यदि बहु धन हो तो गर्व नहीं करे और अल्प धन हो तो दीनता नहीं लावे। लक्ष्मी को चंचला जाने (3/1/4-6)। ऐसे व्रती का मन्द कषायी होना भी आवश्यक है। वह किसी पर दोषारोपण नहीं करे। चोर का भी अनिष्ट न चिते। चोर के पकड़े जाने पर भी क्रोध न करे। सोच ले किसी बलवान ने धन छीन लिया है। लक्ष्मी का विनाश होना स्वभाव है—ऐसा जानकर उस चोर के ऊपर कषाय नहीं करे (3/8/2-10)। स्त्री, पुत्र, स्वजन आदि के वियोग में शोक नहीं करें। इसी प्रकार पुत्र जन्म नहीं होने पर भी मन में क्लेशित नहीं होवे (3/9/1-4)।

कवि अभिप्राय

कवि ने महाव्रत मुनियों के लिए विधेय बताए हैं। जो महाव्रत धारण करने में असमर्थ हैं वे देशव्रती बनकर अणुव्रत धारण करें (3/10)।

मध्यकाल में ऐसा प्रतीत होता है कि मुनि-चर्या में शैथिल्य आ गया था जो कवि को इष्ट नहीं रहा। यही कारण है कि उन्होंने यह लिखने में भी संकोच नहीं किया कि "कोई ग्याहरवीं प्रतिमा धारण करे और कोई आचार्य ग्यारहवीं प्रतिमा नहीं देवे। देशव्रत परलोक का बड़ा धन है। चतुर व्यक्ति सौगन्ध (नियम) नहीं करे (3/9/10-11)। अन्त में कवि ने यह कहकर इस रचना से विराम लिया है कि व्रत—गुरु के नियोग में ही अपनी शक्ति के अनुसार लिया जावे और दृढ़ता से पालन किया जावे (/11/9)।

काव्यात्मक विशेषताएं

डॉ. राजाराम जैन ने अपने शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत काव्य की शैली और विषय की दृष्टि से निम्न विशेषताएं अंकित की हैं—

1. विषय सम्बन्धी गहन तथ्यों को कवि ने पद्धड़िया छन्द में वर्णित कर काव्यत्व प्रदान किया है। फलतः उपदेश भी उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपकों के सहारे उद्बुद्ध हो सके हैं।

2 आचार सम्बन्धी शुष्क और गूढ विषयों को भी सरस काव्य शैली में प्रतिपादित किया गया है। कवि ने कुनैन की गोली पर चढ़ाई गई चीनी की चाशनी का सुन्दर उदाहरण उपस्थित कर दिया है।

3. काव्य में प्रवाह गुण इतना अधिक है कि जिससे सैद्धान्तिक विषय रोड़े बनकर उस प्रवाह को रोक सकने में सक्षम नहीं हो सके हैं। कवि सरस काव्य के रूप में समस्त श्रावकाचार का निरूपण कर आत्मा को मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर करने के लिए प्रयत्नशील रहा है।

4 काव्य के आरम्भ में कवि ने निश्चय नय के अनुसार कथन करना चाहा है, पर जैसे तैसे वह विषय निरूपण में आगे आगे बढता गया है, वैसे-वैसे ही व्यवहार नय को प्रधानता देता गया है। प्रवचनसार और परमात्मप्रकाश से विषय स्रोत ग्रहण करके भी कवि उनकी शैली का निर्वाह नहीं कर सका है। अतएव वह हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्म और परिग्रह बन पांचों पापों के दोषोद्भावन में व्यवहार की दृष्टि से संलग्न रहा है।

5 ब्रह्मचर्यव्रत के निरूपण में कवि ने पर्याप्त विस्तार दिखलाया है। वट्टेकर, कुन्द-कुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, अकलंक और वसुनन्दि आदि आचार्यों के ग्रन्थों से कवि ने केवल बीजसूत्र ही ग्रहण किए हैं और उनके आधार से उसने नई-नई वन-राजि प्रस्तुत की है। ऐसा विस्तार सम्भवतः अन्यत्र नहीं मिलेगा। नर और नारी इन दोनों की दृष्टि से पृथक-पृथक ब्रह्मचर्य का स्वरूप, सीमाएँ एवं गुणदोष इस काव्यग्रन्थ में मार्मिक शैली में विस्तृत रूपेण वर्णित हैं। आगम ग्रन्थों में केवल पुरुष की दृष्टि से ब्रह्मचर्य का प्रतिपादन किया गया है, नारी की दृष्टि से नहीं, पर प्रस्तुत काव्य में उभय दृष्टियों को अपनाकर एक नवीन दिशा प्रस्तुत की गई है।

6. अपभ्रंश की परम्परा में अध्यात्म एवं आचार विषय का निरूपण दोहा-छन्द में हुआ है। इस काव्य में कवि ने इस सीमा क्षेत्र का अतिक्रमण कर कडवक पद्धति में आख्यान के अभाव में भी उक्त विषय का सफल चित्रण किया है।

7. कवि गृहस्थों के मध्य रहता था, अतः गृहस्थों के आचार विचार उनकी कमजोरियां एवं उनके अन्य रीति रिवाजों से पूर्णतया परिचित था। अतएव उसने गार्हस्थिक लोक-जीवन के विभिन्न सम्बधों को लेकर आचार और आध्यात्मिक तत्वों का समन्वय प्रस्तुत किया है।[1]

---

1. रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृष्ठ 438।

कृतज्ञता ज्ञापन

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी के मानद अध्यक्ष श्री एन. के. सेठी तथा मानद मन्त्री श्री कपूरचन्द जी पाटनी, जैनविद्या संस्थान के निवर्तमान संयोजक आदरणीय डॉ. गोपीचन्द जी पाटनी, श्री ज्ञानचन्द्र जी खिन्दूका, निवर्तमान निदेशक प्रो. प्रवीणचन्द जैन तथा वर्तमान संयोजक श्रद्धेय डॉ. कमलचन्द जी सोगाणी की प्रेरणा, सहयोग, मार्गदर्शन और मंगल आशीर्वाद ही मूल रूप से इस सम्पादन कार्य में निमित्त रहा है। मैं सभी का आभारी हूँ।

डॉ. राजाराम जैन आरा, और डॉ. भागचन्द "भास्कर" नागपुर का भी आभारी हूँ। इस कार्य में उक्त मनीषियों की रचनाओं का आवश्यकतानुसार उपयोग किया गया है। संस्थान समिति के अन्य सदस्यों के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अपना स्नेह देकर उत्साहित किया तथा इसे प्रकाशित करने की स्वीकृति प्रदान की।

(डॉ.) कस्तूरचन्द्र 'सुमन'

अप्प-संबोह-कव्व

पढमो-संधि

ओं नमो वीतरागायः ।।[1]

जय मंगलगारउ, वीरु भडारउ,
भुअण[2]-सरणु[3] केवलणयणु[4] ।
लोगोत्तमु गोत्तमु, संजय सोत्तमु[5],
आराहमि तहो[6] जिण-वयणु (छ)।

1.1

चउवीसमु जिणु हय-पंचवाणु । तिहुवण-सिरि-सेहरु[7] वड्ढमाणु[8] ।1।
चउ गइ भव-गमणागमण-मुक्कु[9] । कमट्ठ-णिबिड[10]-बंधण[11]-विमुक्कु ।2।
णव[12]-भाव-जोणि-उप्पत्ति-हीणु । परमप्पय-सुद्ध-सहाव-लीणु ।3।
परिसेसिय पंच पयार[13]-भारु । पाविय संसार-समुद्द-पारु ।4।
आवरणहीणु गय-वेयणोउ । आउसु विमुक्कु हय-मोहणीउ ।5।
धुउ[14] णाम[15]-गोत्तु-विगयंतराउ । परिगलिय सुहासुह-पुण्णु[16]-पाउ ।6।
अवहत्थिय[17] पंच पयार दुक्खु[18] । संपत्तु[19] सहोत्थाणंत[20]-सुक्खु ।7।
चुअ[21]जोणि लक्खु[22]चुलसीदि[23]जम्मु । संसार-असेसावइ अगम्मु ।8।
णासिय ति लिंग पज्जत्तिच्छक्कु[24] । खीणाडयाल[25] संय पयडि-चुक्कु[26] ।9।
अणखंद्ध[27]-दव्व-संबंध चत्तु । जय[28] केवल अप्प सरूव पत्तु ।10।
फेडिय अट्ठारह[29] दोस-भाउ । धोविय अणाइ दुव्वार[30] राउ ।11।
छह दव्व-सरूव फुरंतणाणु[31] । सहजाणंदाचल सुह-णिहाणु ।12।

घत्ता — सो वीर-जिणेसरु, भुवण-दिणेसरु,
हियइ धरेविणु भव-हरणु[32] ।
जहि वुद्धि-पयासें, कहमि[33] समासें,
णिय[34]-संबोह पवित्थरणु[35] ।।1।।

1.1 1. ख-एणा मंगलं । गणेशाय नमः ।। ग (श्री) आत्म संबोध लिख्यते । 2. क-भुवण्ण । ग-भुवण्ण । 3. ग-सरण्ण । 4. ग-केवलनयणु । 5. ग-सोत्तमु । 6. ख-तहं । क-तह । 7. ग-सेहरु । 8. क-वड्ढमाणु ख-वड्ढमाणु । 9. ख-ग-चुक्कु । 10. ग-निविड । 11. कख-बंधण । 12. ग-नव । 13. ख ग-सरीरभारु । 14. खग-धुव । 15. ग-नाम । 16. क-पुण्ण, ग-पुन्न । 17. ख-अवहत्थिय । 18. ख ग-दुक्खु । 19. ग-संपन्न । 20. क ख-सहोत्थाणंत । 21. क-चव । 22. क-लख, ख-लक्ख । 23. ग-चुलसीद । 24. ख-छक्कु । 25. ख-खीडालयाल । 26. क-चक्कु, ख-चकु । 27. ख ग-अणखंध । 28 ख ग-सय । 29. क-अट्ठरह । 30. ख-दुवार । 31. ग-नाणु । 32. ग-भवरणु । 33. ख ग-करमि । 34. ग-निय । 35. ख-पवित्थरणु ।

प्रथम-संधि

संसार की शरण, केवलज्ञानरूपी नेत्रवाले मंगलकारी वीर स्वामी की जय हो। लोक में उत्तम संयमी गौतम (तथा उनसे प्रणत) उनके जिन-वचन की आराधना करता हूँ ।।छ।।

1.1

(मंगलस्वरूप वीरवर्द्धमान-गुण-स्मरण)

कामदेव के पांचों बाणों (द्रवण, शोषण, तापन, मोहन और उन्मादन) का नाशकर, त्रैलोक्य-लक्ष्मी में मुकुट-स्वरूप, संसारिक चारों गतियों (नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव) में गमनागमन से मुक्त, आठों कर्मों (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय) के प्रगाढ़ बन्धन से मुक्त, नौ भाव योनियों – (सचित्त, शीत, संवृत्त, अचित्त, उष्ण, विवृत, सचित्ताचित्त, शीतोष्ण और संवृत-विवृत) में उत्पत्ति से रहित, परम पद-मोक्ष और शुद्ध स्वभाव में लीन, पांच प्रकार के शरीर—(औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्माण) भार का अन्त करके भव-सागर से पार पाकर, ज्ञान और दर्शन के आवरण से रहित, वेदनीय से मुक्त, मोहनीय का नाशकर आयु (कर्म) से मुक्त, नाम, गोत्र और अन्तराय का नाशकर (और) शुभोत्पन्न पुण्य तथा अशुभोत्पन्न पाप को गलाकर, निश्चल, पांचों प्रकार के दुःखों को त्यागकर (और) एक साथ उत्पन्न होनेवाले अनन्त सुख आदि अनन्त चतुष्टय को पाकर, चौरासी लाख जन्म-योनियों से च्युत होकर संसार को निःशेष करनेवाले, अगम्य, तीनों लिंग, (पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग) तथा छहों पर्याप्तियों—(आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन) को नाशकर और क्षीण एक सौ अड़तालीस कर्म-प्रकृतियों से रहित, अणु और स्कन्ध द्रव्य-सम्बन्ध को त्याग-कर केवल आत्म-स्वरूप पानेवाले, अठारह दोष-भाव (जन्म, जरा, तृषा, क्षुधा, विस्मय, अरति, खेद, रोग, शोक, मद, मोह, भय, निद्रा, चिन्ता, स्वेद, राग, द्वेष, और मरण) नाशकर तथा दुःख से रीझने योग्य अनादि के राग को धोकर, छह द्रव्य (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल) स्वरूप स्फुरित ज्ञानवाले, सहजानन्द, अचल सुख-निधान चौबीसवें जिनेन्द्र वर्द्धमान की जय हो। (1–12)

घत्ता —संसार के लिए सूर्य-स्वरूप, संसार का अन्त करनेवाले जिनेश्वर वीर को हृदय में धारण करके उनकी बुद्धि के प्रकाश में विस्तृत निज संबोध (काव्य) संक्षेप से कहता हूँ। (1–1)

1.2

जिणु-थुणमि[1] जगत्तय-लद्धमाणु[2] । अज्ज[3] वि जसु[4] तित्थु[5]-पयट्टमाणु[6] ।1।
वित्थारिज्जइ[7] गुरु-मुणिवरेहिं । पालिज्जइ[8] सावय-णरवरेहिं[9] ।2।
लब्भइ[10] भवियणहि अगव्वएहिं । मा विउ[11] अम्हारिसु[12] भव्वएहिं ।3।
जिणु-तित्थु[13] लहि[14] वि हउ गलिय दप्पु । संबोहमि[15] सइ अप्पेण अप्पु ।4।
हउ एकु[16] जीउ जारिसु ण[17]भंति । जगि[18] सव्व जीव[19] तारिसु[20] वसंति ।5।
ण[22] वि कासु[23] वि हउ ण[24] वि कोवि मज्झु । अप्पेण णिहल[25] एकल्ल बुज्झु ।6।
तिणि कारणि महु दुज्जणु ण[26] कोवि । दव्वत्थें बंधउ[27] सयल लेवि[28] ।7।
इउ[29] जाणिवि[30] चित्त[31] करेवि एउ । जं भासइ सिरि सव्वण्हु-देउ ।8।
सव्वहु[32] सहुच्छंदहि राउ-दोसु । करि मित्तिभाउ[33] णासिय विरोहु[34] ।9।
परदव्व-विसयच्छंदहि ममत्तु । हणि मोहजालु भावहि समत्तु ।10।

घत्ता— जिणधम्मु लहेविणु, तच्चु गहेविणु,
जइच्छाडेसहि[35] जीव तुहु ।
चउ गइहि भमंतउ, चिरसु-रसंतउ,
ताइ[36] सहेसि[37] महंतु-दुहु[38] ।।2।।

1.2 1. ग-थुणिवि । 2. ख-लधमाणु । 3. ग-अजवि । 4. ग-यसु । 5. ख-तिथु । 6. ख-पयटमाणु । 7. ख-विथारिज्जइ । 8. ख-पालिजइ । 9. ग-नरवरेहिं । 10. ख-लभइ । 11. खग-पाविउ । 12. ग-अम्हारिस । 13. ख-तिथु । 14. ख ग-लहेवि । 15. ग-संबोहमि । 16. ग-एक्कु । 17. ग-न । 18. खग-जगे । 19. ग-जीउ । 20. ख-तारिस । 21. ग-वसंति । 22. ग-न । 23. ग-कासु । 24. ग-न । 25. ख-ग-णिहिल । 26. ग-दुजणु न । 27. खग-बंधय । 28. खग-लोयि । 29. ख ग-एउ । 30. ग-जाणिवि । 31 ख ग-चित्तं । 32. ख ग-सव्विहि । 33. ख ग-मित्तीयभाउ, मित्तीभाउ । 34. ख-विराह रोसु, ग-विणिह रोसु । 35. खग-छंडेसहि । 36. खग-ता । 37. खग-साहेसि । 38. क-दुहु ।

1.2

(ग्रन्थ रचना उद्देश्य)

आज भी प्रवर्तमान तीर्थंकर का यश तीनों लोकों में प्राप्त करते हुए जिनेन्द्र की स्तुति करता हूँ (1)। श्रेष्ठ गुरु मुनियों द्वारा (इस जैन धर्म का) विस्तार किया जावे और श्रावकों तथा श्रेष्ठ राजाओं के द्वारा पालन किया जावे (2)। अभिमान रहित होकर भव्य जनों द्वारा प्राप्त किया जावे। विद्वान् भव्य जनों द्वारा हमारे समान नहीं (रहा जावे) (3)। जिनेन्द्र के तीर्थ को पाकर तथा मान गलाकर (मैं) अपने द्वारा स्वयं अपने को सम्बोधता हूँ (4)। जैसे जीव आकाश में अकेला रहता है, वैसे ही संसार में सभी जीव रहते हैं (इसमें) सन्देह नहीं (5)। मैं किसी का नहीं हूँ और न कोई मेरा है। आत्मा से सभी को अकेला जानो (6)। इस कारण मेरा कोई भी दुर्जन नहीं है। सभी द्रव्य और अर्थ से बंधे हैं (7)। ऐसा जानकर चित्त को इस प्रकार करो *जैसा श्री सर्वज्ञ देव कहते हैं (8)। सभी राग-द्वेष त्यागो। विरोधभाव का नाश करके* मैत्रीभाव करो (9)। पर द्रव्यों के विषय—जनित ममता (मोह) को त्यागो और मोहजाल का नाशकर समता-भाव भाओ (10)।

घत्ता—हे जीव! चारों गतियों में भ्रमते हुए और चिरकाल से प्रतिकूल रसों का आस्वादन करते हुए उससे महान् दुःख सहते हो। यदि तुम (उससे) छूटना चाहते हो (तो) जैनधर्म और तत्त्व ग्रहण करो ॥ 1.2 ॥

1.3

कादि वि[1] संसारहो, सिवणयरे

मणु[2] को वि ण[3] लेसइ[4] खंचि[5] करे ।

उवएसु कहेसमि जइ परहो[6],

ता भावइ अह भावइ णरहो[7] ॥

तिण्णि कारणि[8] अप्पहो[9] वज्जरम्मि[10] । अप्पाणउ अप्पें उद्धरम्मि ।1।

मुणि जीव भमंतउ दुक्ख-घणे । जइ दीणउ[11] तुहु[12] संसारवणे ।2।

तउ[13] करि जिणसासण[14] संगहणु[16] । जीवाइ पयत्थहु[15] सद्दहणु ।3।

छंडहि कुदेउ मोहें-जडिउ[17] । मिच्छत्त-दोस-धंधलि पडिउ ।4।

अण्णाणंधउ[18] दप्पुब्भडउ । पंचिंदिय-सुहरस-लंपडउ ।5।

एयारस[19] देवह मा णवहि[20] । अवरइमि कुदेवइ परिचवहि[21] ।6।

किं बहुणा एकु जि परम जिणु । इयरइ मा पुज्जहि तेण विणु ।7।

देवत्तु जिणेसर[22] परिघडइ । अवरह तं कुडु वि ण[23] संघडइ ।8।

घत्ता— जिणवर-गुण-णियरह, देवहं इयरहं,

गुणु-दोसु वि जाणेविणु ।

गुणु सयलु गहिज्जइ, दोसु चइज्जइ,

मणि विचारु, माणे विणु ।3।

1.3 1. ख-काइेवि, ग-कट्टेवि । 2. ग-मइ, क-महो । 3. कग-न । 4. ख-णेसइ, ग-लेसइ । 5. ग-पंचि । 6. ख-परजणहो । 7. ग-अहभावणरहो । 8. खग-कारणे । 9. ख-अपहो । 10. ख-उपरमि । 11. कख-पीरउ । 12. ग-तुहु । 13. खग-तो । 14. क-जिण सासणे । 15. ग-पयथहु । 16. ग-सदहणु । 17. ग-नडिउ । 18. ग-अन्नाणंधउ । 19. खग-एयारिस । 20. ग-मानवहि । 21. खग-परिचयहि । 22. खग-जिणेसहो । 23. कग-न ।

1.3

(निज़ोपदेश-हेतु एवं संसार-मुक्ति-चिंतन)

कोई भी मनुष्य कन्धे पर बैठाकर संसार काट करके शिव नगर में नहीं ले जावेगा। यदि दूसरों को उपदेश करूँगा तो मनुष्य के निम्न भाव भाता हूँ। (मनुष्य की निम्नता को प्राप्त करूँगा) इस कारण से स्वयं को कहता हूँ (और) अपना अपने द्वारा उद्धार करता हूँ (1) हे जीव! सुनो सघन दुःखकारी संसाररूपी वन में भ्रमते हुए यदि दीन-शिथिल हो गये हो (2) तो जिनेन्द्र का शासन ग्रहण करके जीवादि पदार्थों पर श्रद्धान करो (3) मिथ्यात्व दोषों के मंथन में पड़े हुए मोह से जड़ित कुदेवों को छोड़ो (4) अज्ञान से अन्धे, महान् घमण्डी, पाँचों इन्द्रियों के विषय-रसों के लम्पटी व्यन्तर देवादि (तथा) अन्य कुदेवों को नमन मत करो, त्याग करो (5-6) बहुत यथा एक जिनेन्द्र ही श्रेष्ठ हैं। उन्हें छोड़कर अन्य देवों की पूजा मत करो (7) जिनेश्वर के देवत्व का संभावन करो। अन्य देवों से इष्ट रूप से मेल मत करो (8)

घत्ता—जिनेन्द्र के गुण-समूह और इतर देवों के गुण-दोषों को जानकर मन में विचार किए बिना सभी गुण ग्रहण कीजिए और दोष त्यागिये ॥ 1.3 ॥

14

जो जासु को वि पुज्जइ णवेवि[1] । सो भुवणि होइ तारिसु मरेवि ।1।
जो पुज्जइ ढोरु[2] सो[3] होइ ढोरु । चोरह सेवंतह[4] होइ चोरु ।2।
सप्पहो[5] पुज्जंतह[6] सप्पु[7] होइ । भिविखय[8] संगे[9] लक्खिउ[10] ण कोइ[11] ।3।
एयाइ देव कुच्छिय अणेय । चेयण वि अचेयण विविह भेय ।4।
जो मूढबुद्धि[12] पुज्जइ[13] णवेवि[14] । सो चउ गइ दुहभायणु हवेइ[15] ।5।
इय[16] जाणिवि[17] जोच्छंडइं[18] कुदेउ[19] । जिणवर जगणाहहो[20] करइ सेवु[21] ।6।
उप्पज्जइ मरिवि[22] सु देवलोइ । जगगुरु-पुज्जइ[23] सुरपुज्जु[24] होइ[25] ।7।
माणिवि सुर रमणि विमाण-सोक्खु[26] । होइ वि णरिंदु[27] पुणु लहइ मोक्खु[28] ।8।
एउ मुणिवि चित्ति[29] अरहंतु देउ । आराहहि कय संसारच्छेउ ।9।
परिहरिवि जम्मजरमरण-दुक्खु[30] । पावहि अणंतु णिव्वाण[31]-सुक्खु[32] ।10।

घत्ता— एरिसु मइ अक्खिउ[33], देउ परिक्खिउ[34],
णिच्छिउ[35] जीव मुणिज्जहि ।
एवहि गुरु भासमि[36], तुज्झु पयासमि,
एक्कचित्तु[37], णिसुणिज्जहि[38] ।4।

1.4 1. ग-नेवेवि । 2. ग-ढोरे । 3. ग-सु । 4. ग-सेवंतहो । 5. ग-अप्पहो । 6. खग-पुजंतहो । 7. क-होइ सप्पु । 8. कख-भिक्खिय । 9. ख-सिंगे, ग-संगे । 10. कख-लक्खिउ । 11. ख-कोवि । 12. ख-मूढबुधि । 13. ग-पुजइ । 14. ग-नवेवि । 15. ख-हवेय । 16. खग-इउ । 17. ख-जाणेवि । 18. ख-छंडेवि । 19. ग-कुदेव । 20. ग-नाहहो । 21. खग-सेव । 22. ग-मरेवि । 23. ख-पुज्जए, ग पुजइ । 24. ग-सुरपुजु । 25. ख-लोइ । 26. क-सुक्खु, ग-सोक्खु । 27. ग-नरिंदु । 28. ख-मोक्खु । 29. ख-चित्ते । 30. क-पावइ णिव्वाण सुक्खु । 31. ग-निव्वाणं । 32. क-मोक्खु, ख-मोक्खु, ग-सोक्खु । 33. खग-अक्खिउ । 34. ख-परिक्खिउ । 35. ग-निछउ । 36. क एवहि भासमि । 37. कख-एकचित्तु । 38. क-णिसुणेज्जहि, ग-निसुणिज्जहि ।

1.4

(जस पूजा तस फल दिग्दर्शन)

जो कोई भी जैसे (देव) को पूजता, नमस्कार करता है, वह मरकर संसार में वैसा ही होता है (1) जो पशुओं को पूजता है वह पशु होता है (जैसे) चोरों की सेवा करनेवाला चोर (2) सर्प की पूजा करनेवाला सर्प होता है। भिखारी के साथ में कोई दिखाई नहीं देता (3) चेतन और अचेतन इत्यादि विविध भेदवाले अनेक कुत्सित देव हैं (4) जो मूढबुद्धि (उन्हें) पूजता है, नमस्कार करता है, वह चतुर्गति के दुःखों का पात्र होता है (5) इस प्रकार जानकर जो कुदेवों को त्याग देता है और जगत के स्वामी जिनेन्द्र की सेवा करता है (6) वह मरकर देवलोक में उत्पन्न होता है। (जो) जगत के गुरु को पूजता है (वह) देव-पूज्य होता है (7) देवांगनाओं और विमान-सुख का अनुभव करने के पश्चात् राजा होता है और इसके पश्चात् मोक्ष पाता है (8) चित्त में ऐसा जानकर संसार का छेदन करनेवाले अर्हन्त देव की आराधना करके जन्म, जरा और मरण — दुःखों का त्याग कर अनन्त निर्वाण-सुख पाओ (9-10)।

घत्ता—हे जीव ! देवों की परीक्षा करके जो मैंने कहा है वह निश्चय जानो। एकाग्र मन से सुनो—अब गुरु के सम्बन्ध में तुझे समझाता हूँ ॥ 1.4 ॥

1.5

जो गुरु अमुणिय जिणधम्म-मग्गु । वय-वज्जिउ[1] इंदिय-विसय-भग्गु ।1।
कोहग्गि[2] पलित्तउ माणदड्ढु[3] । मायारउ लोह-दवग्गि दड्ढु[4] ।2।
कुच्छिउ धम्मालसु बंभहीणु । उड्डियउ[5] करु अणुदिणु णाय[6] दीणु ।3।
अण्णाणधम्मु पयडइं णराहं[7] । सो सइ[8] वुड्डइ बोलइ[9] पराह ।4।
सो पुणु जाणिज्जइ[10] गुरु महंतु । जो दंसण णाणचरित्त[11]वंतु[12] ।5।
जो जाणइ णिच्छइ[13] मोक्खमग्गु । मायाविहीणु दरिसइ समग्गु[14] ।6।
हय कोह[15]-माणु परिहरिय लोहु । कय मित्तिभाउ णासिय[16] विरोहु ।7।
जो जीव-दयावरु सच्चभासि । वज्जिय[17] अदत्तु दिढ[18] बंभरासि ।8।
जो कय इंदिय जउ मुक्कु[19]संगु । ण[20] करइ कयावि चारित्तभंगु ।9।
जो[21] सहिय परीसहु[22] गलिय राउ । अरि सुहि तिण मणि मज्झत्थभाउ ।10।

घत्ता—एकल्ल[23]वियंवरु, जो कय संवरु,
अट्ट-रउद्दज्झाण[24]-रहिउ[25] ।
सो गुरु आवज्जहि, चलणइ[26] पुज्जहि,
झाइय[27] धम्म-सुक्कु-[28]सहिउ ।1.5।

1.5 1. ग-वजिउ । 2. ग-कोहगि । 3. ग-दडु, ग-घड् । 4. ग-दडु । 5. ग-उडिया । 6. कग-णाइं । 7. ग-नराहं । 8. ग-सोसय । 9. ग-बोलहि । 10. ग-जाणिजहि, ग-जाणिज्जहि । 11. ग-चरितु । 12. ग-वंतु । 13. ग-णिछउ । 14. ग-समग्गि । 15. क-मोह । 16. ग-नासिय । 17. ग-वजिउ । 18. ग-दिढु । 19. ग-मुक । 20. ग-न । 21. ग-जा । 22. क-परीसह । 23. कग-एक्कल्ल । 24. ग-झाण । 25. ग-रहियउ । 26. ग-चलणइं । 27. क-झाइय । 28. ग-सुक ।

1.5

(असम्यक एवं सम्यक गुरु-स्वरूप)

जैनधर्म, जिनमार्ग और जिनव्रतों से रहित इन्द्रिय-विषयों से मग्न, क्रोधाग्नि से प्रदीप्त, दृढमानी, माया में रत, लोभ रूपी दावाग्नि से दग्ध, कुत्सित, धर्म में आलसी, ब्रह्मचर्य-विहीन, हाथ ऊपर करके प्रतिदिन दीन के समान (आचरणशील) दूसरों को अज्ञानधर्म प्रकट करनेवाले, शोषण-कारी और डुबानेवाले बोल दूसरों को बोलनेवाले को (गुरु नहीं जानो) (1–4) उसे महान् गुरु जानिये जो दर्शन, ज्ञान और चरित्रधारी है, जो निश्चय मोक्षमार्ग को जानता है, वह अपने मार्ग में माया से रहित दिखाई देता, क्रोध और मान भंग कर तथा लोभ को हटाकर मैत्रीभावपूर्वक विरोध नाश करके जो जीव-दया करता है, सत्यभाषी है, बिना दिये लेने का त्यागी है, ब्रह्मचर्य में दृढ़ है, जो इन्द्रिय विषयों को जीतकर परिग्रह से मुक्त हैं, जो कभी भी चारित्र भंग नहीं करता, जो परीषह सहकर और राग गलाकर शत्रु-सुख के सम्बन्ध में मध्यस्थ भावी होता है (5–10)।

घत्ता—एकाकी, दिगम्बर जिन्होंने संवर किया है, आर्त और रौद्रध्यान से जो रहित तथा धर्म और शुक्ल ध्यान से सहित होते हैं उन गुरु को प्राप्त करो और उनके चरण पूजो ॥ 1.5 ॥

1.6

जइ ते हउ पुणु पचक्खु गुरु । दीसइ ण[1] को वि पय णविय[2]गुरु ।1।
तहि[3] विहु कुच्छिय गुरु[4] मय-सहिउ । मा वंदहि तव-संजम-रहिउ ।2।
कुच्छिय गुरु पाउ ण[5] अवहरइ[6] । बोहित्थ कज्जु किं सिल करइ[7] ।3।
इउ वुज्झवि[8] परम जईसरहं । पय झायहि णिहरई[9] सरहं[10] ।4।
भवियण जण-मण संवोहणहं । भव जलणिहि[11] तारण पोहणहं ।5।
मय-मोह-पमाय-अदूसियहं[12] । पंचमचारित्त विहूसियहं[13] ।6।
थिय[14] परम समाहि परिट्ठियहं । केवलसिरि सुह उक्कंठियहं[15] ।7।
परिवज्जिय भोय-भुयंगयहं[16] । परमप्पयरूवलयंगयहं[17] ।8।
सुमरंतहो गुणु जइयहो[18] तणउ । तुव होइ परोक्खु[19] महाविणउ ।9।
णिज्जरइ पाउ[20]-पुण्णु जि हवए[21] । मुणि-गुण-चिंतइं सहु संभवए[22] ।10।

घत्ता—केवलगुण-मंडिउ, दोसहि छंडिउ,
आयमलोयणु अणुसरहि ।
तुहु गुरु माणिज्जहि[23], हियइ धरिज्जहि[24],
इयर असेसहि परिहरहि ।1.6।

---

16 1. ग-न । 2. ख-णमिय, ग-णमीय । 3. खग-तह । 4. ग-गुर । 5. ग-न । 6. क-अवहरए । 7. क-तरए । 8. ग-वुज्जेवि । 9. ख-णिहयरइ, ग-निहयरइ । 10. ग-सरई । 11. ग-जलनिहि । 12. क-पमायइ दूसियउ । 13. क-विभूसियउं । 14. खग-थिर । 15. ख-उक्कंठियहं । 16. खग-भुअंगयहं । 17. ग-परमप्पयरूव लयं गयहं । 18. ख-जईयहो, ग-जइयहं । 19. ख-परोख, ग-परोक्ख । 20. ग-पउ । 21. खग-हवइ । 22. ग-संभवइ । 23. खग-मणिज्जहि । 24. धरिजहि ।

1.6

(सम्यक-असम्यक-गुरु-महात्म्य)

यदि देव-वन्दित चरणवाला कोई भी गुरु प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता है तो भी निश्चय से ऐसे कुत्सित, मायावी, असंयमी गुरु की वन्दना मत करो (1–2) कुत्सित गुरु पाप दूर नहीं करता है । (ठीक है) नौका का कार्य क्या शिला करती है (3) ऐसा जानकर अष्टापद के दहाड़ने पर भी परम यतीश्वर के चरणों को ध्याओ (4) भव्य जनों के मन को सम्बोधनेवाले (वे) संसार से पार होने के लिए नौका स्वरूप हैं (5) माया, मोह, प्रमाद से अदूषित तथा पाँचवें यथाख्यातचारित्र से विभूषित, स्थिर परम समाधि में स्थित, केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी-सुख में उत्कंठित, भुंजग स्वरूप भोगों को त्यागकर परमपद रूपीगृह के अवयव स्वरूप यति के गुणों का तनिक स्मरण करने से तुम्हारी परोक्ष में महाविनय होती है । पाप-पुण्य की निर्जरा होती है । मुनि के गुणों का चिन्तन करने से सुख उत्पन्न होता है । (6–10)

घत्ता—केवलज्ञान रूपी गुणों से विभूषित, दोषों से रहित तथा आगम-नेत्रधारी का अनुशरण करो । तुम (उन्हें) गुरु मानो (और) हृदय में धारण करो । अन्य सभी (गुरुओं) का त्याग करो । (1.6)

1.7

अहो जीव विमल परिणाम जुअ[1] । सुणि एवहि भासमि धम्मु[2] तुव[3] 11
जो कुगुरु-कुआगमि भासियउ । सो धम्मु ण[4] होइ सुहासियउ 12
जं पुणु केवलि-जिण वज्जरिउ । महि गणहर देविहि[5] वित्थरिउ[6] 13
सुवकेवलि[7] परिवाडिए गहिउ । णिग्गंथा[8]इरियह जणे कहिउ 14
सो धम्मु खविय संसारमलु । जीवह दरिसइ सिव सुक्ख[9]फलु 15
जिणुदेउ परम णिग्गंथ गुरु । दह लक्खणु[10] धम्मु[11] अहिंसपरु 16
जो[12]णिच्छइ भावे सद्दहइ । सम्मत्तरयणु[13] फुडु सो हवइ[14] 17
सुणि इक्कह[15] भावि[16] इक्कमणु[17] । करि मंज मंस महु परिहरणु[18] 18
पंचुवर[19]-फल वज्जण[20] सहिउ । वसु भेय[21] मूलगुण[22] तुव कहिउ 19
इय पढम अट्ठ जो परिहरइ[23] । सो परु णरु[24] उत्तरगुण धरइ[25] 110

घत्ता—मइरा मक्खिउ पलु[26], पंचुवर फलु,
विविध जीव-जम्भायरहं[31],
तिविहि[28] वज्जिज्जहि[29], णवि[30] चक्खिज्जइं[31],
दाविय भवदुह-सायरइं[32] 1.71

1.7 1. क-जुवा । 2. ग-धम । 3. क-तुवा । 4. ग-न । 5. ख-देवेहि । 6. ख-विथरिउ । 7. ग-सुयकेवलि । 8. निग्गंथापरियहि । 9. ख-सोख, ग-सुख । 10. कख-लखणु । 11. ग-धमु । 12. ग-जे । 13. क-समत्तरयण । 14. क-हवए । 15. खग-एव्वहि । 16. ख ग-भावें । 17. क-एक्कमणे । 18. क-परिहरणे । 19. ग-पंचवर । 20. ग-वज्जाण । 21. ख-भव । 22. कग-मूलगुण । 23. क-परिहरए । 24. क-पर । 25. क-धरए । 26. क-फलु । 27. ग-विवह जीव जम्मयरइं । 28. क-तिविहे । 29. क-वज्जिज्जइं । 30. ग-नवि । 31. ख-चखिजहि । 32. ग-सायरह ।

(1.7)

(धर्म-स्वरूप और अष्टमूलगुण विवेचन)

हे जीव ! विशुद्ध परिणामों से युक्त होकर सुनो—तुम्हें धर्म समझाता हूँ (1) जो कुगुरु और कुआगम कहा गया है, वह धर्म नहीं होता है (यह) भली प्रकार से कहा गया है (2) जो जिनेन्द्र केवली द्वारा कहा गया और गणधर देव के द्वारा पृथिवी पर (जिसका) विस्तार किया गया, श्रुतकेवलियों ने (जिसे) परम्परा से प्राप्त किया और निर्ग्रन्थ आचार्यों ने (जो) जन-जन में कहा, (जो) सांसारिक मलिनता का क्षय करके जीवों को शिव-सुखरूपी फल दर्शाता है, वह धर्म है (3-5) जिनेन्द्र देव और निर्ग्रन्थ गुरु तथा दस लक्षणात्मक और अहिंसात्मक धर्म पर जो निश्चय से भावपूर्वक श्रद्धा करता है वह स्पष्ट है (कि) सम्यक्त्व-रत्न पाता है (6-7) एकाग्रभाव और मन से सुनो—पंच उदम्बर फल और मद्य-मास-मधु के त्याग सहित मूलगुण के तुम्हे (ये) आठ भेद कहे हैं (9) पहले इन आठों को जो त्यागता है वह उत्तम मनुष्य ही उत्तर गुण धारण करता है। (10)।

घत्ता—मद्य, मांस, मधु और पंच उदम्बर फल विविध जीवोत्पत्ति की खदान है। (ये) भव-दुःख सागर दर्शाते हैं। (अतः) मन, वचन, काय तीनों प्रकार से त्यागो, चखो भी नहीं (1.7)।

1.8

जिण वयणु जीव[1] हियवइ धरहि । तुहु[2] सयलह जीवह दय[3] करहि ।1।
भउजणहि[4] ण[5] कासु वि पसु-णरहो[6] । अप्पाणु जेम रक्खहि परहो ।2।
जीवह[7] वहु हियइ ण[8] चिंतवहो । मा कहिमि मारि वयणु वि चवहो ।3।
काएण[9] ण[10] घायहि को वि पुणु । इय तिविहें[11] पालहि जीव गणु ।4।
पर दिण्ण[12] गालि घाउ वि खमहो[13] । उट्ठउ कोहाणलु[14] उवसमहो ।5।
सहसा कोवेण[15] ण[16] परु हणहो । बंधव तहं विड सम रिस गणहो[17] ।6।
अप्पाण[18] मेरु परु तिण सरिसु । मा भावहि माण कसाय[19] वसु ।7।
छलु वलु करेवि वंचेवि जणु । मा हिंसहि लोह णिसण्ण[20] मणु[21] ।8।
घरु गामु णयरु वणु मा डहहि । पर[22]-हम्मुमाणु[23] मा सद्दहहि ।9।
जण-पोडणि मा अणुमइ करहो[24] । कि वित्थरु हिंसा परिहरहो[25] ।10।

घत्ता—जो हिंस-विवज्जिउ, वुहयण[26]–पुज्जिउ,
धम्मु तिलोय पियारउ ।
किज्जइ सम भावें,[27] विहुणिय पावें,[28]
सो भव-दुक्ख[29]-णिवारउ[30] ।1.8।

1.8 1. खग–अवह । 2. ग-तुह । 3. ग-देव । 4. क–भउजणइ । 5. ग–न । 6. ग–नरहो । 7. ग–जीवहो । 8. ग–न । 9. ख–कोएण । 10. ग-न । 11. खग–तिविहि । 12. ग–दिन्न । 13. ख–खमहि । 14. ख–कोवाणलु, ग–कोहानलु । 15. क–कोवि ण । 16. ग–न । 17. ग–गणहि । 18. खग–अप्पाणु । 19. क–लोहपिसण मरिसु । 20. ग–निसण्णु । 21. क–इस पाण्डुलिपि में यह पंक्ति नहीं दी है । 22. खग–पय । 23. कग-हम्म । 24. क–जण पीडणे अणुमइ करहि, ख–जण पीडणे मा अणुमइ करही । 25. क–कि हिंसा वित्थरु परिहरहि, ख–कि वित्थरु हिंसा परिहरही । 26. वुहियण । 27. ग–भाँवि । 28. क–पावि । 29. ख–दुख । 30. ग–निवारउ ।

(1.8)

(जीव-वध निषेधात्मक उपदेश)

तुम सभी जीवों पर दया करो यह जिनेन्द्र वचन (आज्ञा) हे जीव ! हृदय में धारण करो (1) किसी भी पशु या मनुष्य का भोजन मत करो। अपने समान पर की रक्षा करो (2)। जीव घात का हृदय में चिन्तन न करो, और न मारने का वचन बोलो (3) स्वयं भी किसी का घात मत करो। इस प्रकार मन, वचन और काय तीनों से जीव-समूह को पालो (4) दूसरों के गालियाँ देने या घात करने पर भी क्षमा करो। उठते हुए क्रोधानल का उपशमन करो (5) क्रोध से एकाएक दूसरे का घात मत करो। क्रोध की धूर्त बन्धुओं के समान गणना करो (6) मान-कषाय वश स्वयं को मेरु-पर्वत के समान बड़ा और दूसरों को तिनके के समान (तुच्छ) मत समझो (7) छल-बल करके लोगों को मत ठगो और लोभासक्त मन से हिंसा मत करो(8) घर, ग्राम, नगर, वन मत जलाओ। दूसरों का वध करते हुए श्रद्धान मत करो (9) जन पीड़ाकारी अनुमति मत करो। विस्तार (पूर्वक कहने) से क्या ? हिंसा का त्याग करो (10)।

घत्ता—जो धर्म हिंसा रहित है (वह) बुधजनों द्वारा पूजा जाता है। वह धर्म तीनों लोकों को प्रिय है। वह पापों का उन्मूलन करके संसारिक दुःखों का निवारक है। (उसे) समता परिणामों से (धारण) कीजिए (1.8)।

1.9

संसारि[1]-जीव जे थिय विविहं	। तस-थावर भेयहिं ते दुविहं	।1।
इक्किदिय[3]-थावर कम्म-वसा	। बे तिय[4] चउ पंचिदिय[5] वि तसा	।2।
जसु सयल णिवित्ति[6] ण[7] संभवइ	। तस हिंस-विरत्तउ सो हवइ[8]	।3।
थावर वि ण[9]विणु कज्जि[10] वहइ[11]	। पढमाणुव्वय वय विहियमइ[12]	।4।
आरंभहो णवि[13] उच्छाहमणु[14]	। कज्जइवि[15] करंतु ण[16]तवइ जणु	।5।
ण[17] वि कूडभाउ[18] णवि[19] वंक मइ[20]	। पंजल मणु कय सब्भाव रइ	।6।
परलोयहु तह घर माणुसहं[21]	। जो विउल[22] चित्तु परणिय[23] वसहु	।7।
सव्वहं जीवहं हिउ चिंतवइ	। कासु वि उप्परि णउ[24] दुट्ठमइ[25]	।8।
छिंदणु-भेयणु-बंधणु-दमणु	। ण[26] करइ वावारु वि जण-तवणु	।9।
पहु[27]जन्तु णिरिक्खिवि[28] देइ पउ	। रक्खइ आयरिण[29] अहिंसवउ	।10।

घत्ता— वज्जिय पर वंचणु, कय जिणु[30] अंचणु,
जो सव्वहं वीसास-घरु ।
सो उवसामिय मणु, आणंदिय जणु,
धरइ अहिंसा-धम्म-वरु ।1.9।

1.10 1. ख ग-संसार । 2. क-तिविहु विहं । 3. ख-एकिदिय, ग-एक्केंदिय । 4. ग-तेय । 5. ग-पंचिदय, ख-पंचेंदिय । 6. ग-निवित्ति । 7. ग-न । 8. हवय । 9. ग-न । 10 ख ग-कज्जें । 11. क-वहए, ख-वहइ । 12 ख-विहिय मय, ग-विहियामइं । 13. ग-न वि । 14. ख-उछाहमणु, उछाहमाणु । 15. क-कज्जइवि । 16. ग-न । 17. ग-न । 18. ख-कूरभाउ, ग विक्करभाउ । 19. ग-न वि। 20. क-वंकमए । 21. ख-माणसहं । 22. ख-विवल । 23. ख परिणिय, ग-परिनिय । 24. ग-णउ । 25. क-दुट्ठमए । 26. ग-न । 27. ख-पहु, ग-पहि । 28. क ग-निरिक्खिवि । 29. क ख-आयरेण। 30. क ख-जिण ।

1.9

जीव-भेद एवं अहिंसक-स्वभाव-स्वरूप

संसार में जो विविध प्रकार के जीव स्थित हैं वे दो प्रकार के हैं—त्रस और स्थावर (1) कर्म वश एकेन्द्रिय (जीव) स्थावर, और दो, तीन, चार तथा पांच इन्द्रियों वाले त्रस (जीव) हैं (2) जिनके सम्पूर्ण (हिंसा) निवृत्ति सम्भव नहीं होती है। वह त्रस हिंसा से विरत होता है (3) स्थवर जीवों का भी निरर्थक घात नहीं करता है। प्रथम अणुव्रत दया विधि मय है (4) उत्साहित मन से (कार्य) आरम्भ मत करो। किन्तु कार्य करते हुए जन के प्रति विनत् रहो (5) क्रूर भाव मत करो और न वक्रबुद्धि करो। मन सरल करके सद्भावों में रत रहो (6) उस मनुष्य का परलोक घर है जो विमल चित्त परणति के वश है (7) सभी जीवों का हित विचारता है। किसी के भी ऊपर दुष्ट बुद्धि नहीं करता है (8) जन संतापकारी छेदन, भेदन, बन्धन और दमन व्यापार नहीं करता है (9) जन्तु देखकर मार्ग में पैर देता है (और) आचार्य से अहिंसाव्रत रखता है (10)।

घत्ता—पर-वंचना त्याग कर और जिनेन्द्र की अर्चना करके जो सभी का विश्वास पात्र होता है, वह उपशान्त मन से लोगों को आनन्दित करते हुए श्रेष्ठ अहिंसा धर्म धारण करता है ॥1.9॥

1.10

सुणि जीव सुहंकरु[1] जिण-वयणु । जइ लोडहि अविचलु[2] सुहरयणु[3] ।1।
तुहुं[4] केण वि पिल्लिउ[5] परिहसिउ । जइ बंधिउ पिट्टिउ उवहसिउ[6] ।2।
सुय[7] बंधव पियर विप्रोइयउ । जइ केण वि कहनि परज्जियउ ।3।
फेडिउ दंडाविउ णावियउ[8] । जइ माणभंगु तुव दावियउ[9] ।4।
रिउणा[10] ढोयउ णिव[11] मारणउ । सहु कारणे अहव अकारणउ ।5।
एयाइ महावइ[12] पावियउ । अवरेहिमि दुक्खहि तावियउ ।6।
तउ[13] कोहु करे विणु मणि सुइरो[14] । मातेण सरिसु बंधइ-वइरो[15] ।7।
मातहि[16] मारणे[17] उज्जमु करहि । तहो उप्परि कोहु[18]ण[19]मणि धरहि[20] ।8।
पुव्वकिउ भुंजहि इउ सयलु । तुहु अरि मिसेण णिव[21] पावफलु ।9।
सइ कम्मु करिवि रूसेहि किसू[22] । तुहु लहहि सुहासुह कम्म-वसू ।10।

घत्ता— इउ हियइ मुणेविणु, कोहु[23] हणेविणु,
परकिउ दुक्खु जि जइ[24] खमहि ।
सुअणत्तु लहेविणु, कम्मु डहेविणु,
तउ सासम-सिव-सुह रमइ[25] ।।1.10।।

1.10 1. कग–सुहकर । 2. ग–अविचलु । 3. ग–सुहयरयणु । 4. क–तुहु । 5. क–रिट्टिउ, ख–पेल्लिउ । 6. क–परहसिउ । 7. ख–सुव । 8. ग–नाविघउ । 9. घ–दवियव्वउ । 10. ग–रिउवणा । 11. ग–निउ । 12. ग–माहावइ । 13. ख ग–तो । 14. ख–मणेसुइरु, ग–मणिसुइरु । 15. ख–वइरु, ग–वयरु । 16. ख ग–मातहो । 17. ग–मारणउ । 18. ख ग–दोहु । 19. ग–न । 20. ग–धरिहि । 21. ख–णिय, ग–निय । 22. ख ग–केमु । 23. क–कम्मु । 24. ख–जय । 25. ख ग–रमहि ।

1.10

स्व कर्म फल चिन्तन

हे जीव ! भव-भ्रमण पर विजय करानेवाला, अविचल सुखकारी, शुभरत्न स्वरूप जिनेन्द्र-वचन सुनो (1) यदि किसी के द्वारा तुम पेरे गये, बांधे गये, पीटे गये, (तुम्हारा) उपहास किया गया (2) पुत्र, भाई, माता-पिता का विछोह किया गया, यदि किसी के द्वारा परजीवी कहा गया (3) दूर हटाये गये, दण्डित किए गए झुकाए गए, यदि सम्मान भंग करके तुम दबाये गये (4) वैरी के द्वारा ढोकर ले जाने पर कारण सहित या अकारण राजा के मारने पर (5) इत्यादि महा आपत्तियां पाकर तथा ऐसे ही अन्य दुःखों से सतप्त होकर (6) मन की शुचिता से क्रोध किए बिना बन्धन में पड़े शत्रु को माता के समान विचारो (7) माता के मारने में जो उद्यम करता है उसके ऊपर (भी) मन में क्रोध मत धारण करो (8) तुम यह सब पूर्वोपार्जित अपने पापों का फल शत्रु के बहाने भोगते हो (9) स्वयं कर्म करके किस पर क्रोध करता है ? अच्छा और बुरा तुम कर्मवश पाते हो (10)।

घत्ता—इस प्रकार हृदय में जानकर (और) क्रोध का विनाश कर परोत्पन्न दुःखी को यदि क्षमा करता है तो सौजन्यता पाकर (और) कर्म जलाकर शाश्वत शिव-सुख में रमता है ॥ 1.10 ॥

1.11

सहु केरण वि वइरु म[1] हियइ धरि । श्ररण उवयारहो उवयारु करि ।1।
जइ[2] धम्ममूलु जिरणवरु चवइ[3] । सा[4] उत्तम खमइ रण[5] संभवइ ।2।
विणु खमइ रण लब्भइ जोवदया[6] । विणुताइ[7] रणरिंद[8] वि णरइ[9] गया[10] ।3।
इम[11] चिंतिवि[12] उत्तम खम करहि । चिर संचिउ कलिमलु रिणज्जरहि[13] ।4।
श्रज्जहि ण कम्मु पुणु श्रवरु तुहु । भव-दुक्खहो मुच्चहि लहहि सुहु ।5।
पोडिज्जमाणु[14] श्रवरेंहि जइ । खम-छंडहि वइरिरिण[15] वद्धमइ[16] ।6।
तउ[17] श्रवरु कम्मु श्रज्जहि श्रसुहु । पुणु तहो फलेरण श्रणु हवइ-दुहु ।7।
कुगइहि पावहि जम्मंतराइ । भवि-भवि[18] दुक्खाइ[19] णिरंतराइ[20] ।8।
तो वरि णिम्मल खम उद्धरहि[21] । कलि रुक्ख[22] मूलुच्छेउ वि करहि ।9।
कोहाणलेरण[23] तप्पंति रणरा[24] । खम रणीरें[25] सीयल[26] हुंति[27] परा ।10।

घत्ता— संसार श्रसारहो, बहु-दुह-भारहो,
एम होइ णिग्गमु[28] परु[29] ।
विवरीउ करंतहं, दुम्मइवंतहं,
जायइ दुक्खु परंपरइं[30] ।1.11।

1.11 1. ग-न । 2. ख-जा, ग-जो । 3. ख-चवेइ । 4. ग-सो । 5. ख ग-मा । 6. ख-जीवदय । 7. ग-विणुताएं । 8. ग-नरिंदवि । 9. ग-नरय । 10. ख-गय । 11. ख ग-इउ । 12. ख-चितेवि, ग-चितवि । 13. ग-निज्जरहि । 14. ग-पीडिज्जमाणु । 15. ख-वइररिग, ग-वइरनि । 16. ख-बधरइ । 17. ख-तो, ग-तौ । 18. ख-भवे-भवे । 19. ख-दुक्खाइ । 20. क-निरंतरइ, ग-निरंतराइ । 21. ख-उधरहि । 22. ख-ग-रुक्खहो । 23. ग-कोहानलेण । 24. ग-नरा । 25. ग-नीरें । 26. ग-सीयल । 27. ख ग-होंति । 28. ख- णिग्गम, ग-निग्गमु । 29. ख ग-पर । 30. ख ग-परंपर ।

1.11

उत्तम क्षमा महात्म्य

किसी के भी साथ वैर हृदय में मत रखो। अनुपकारी का उपकार करो (1) जिनेन्द्र जिसे धर्म का मूल कहते हैं, वह उत्तम क्षमा है, संशय नहीं (2) जीव-दया क्षमा के बिना प्राप्त नहीं होती। उस क्षमा के अभाव में राजा भी नरक गया (3) ऐसा विचार कर उत्तम क्षमा करो और चिर संचित पापो की निर्जरा करो (4) पश्चात् तुम और कर्मों का अर्जन न करो, भव-दुःखों को त्यागो और सुख पाओ (5) दूसरों के द्वारा दुःखी होते हुए (भी) यदि आबद्ध वैरियों को क्षमा करके छोड़ते हो (6) तथा यदि और अशुभ कर्म अर्जित करते हो (तो) उनके फलस्वरूप दुःख का अनुभव करते हो (7) अन्य जन्मान्तर में कुगति पाते हो और भव-भव में निरन्तर दुःखी होते हो (8) अतः श्रेष्ठ निर्मल क्षमा से उद्धार करो (और) पाप-वृक्ष की जड़ का छेदन करो (9) मनुष्य क्रोधाग्नि से संतप्त होते हैं और उत्तम क्षमा रूपी नीर से परम शीतल होते हैं (10)।

घत्ता—संसार असार है, बहुत दुःखों का बोझ है। इससे निर्गमन इसी प्रकार होता है। इसके विपरीत आचरण से दुर्मति जीवों के परम्परा से दुःख होता है।

1.12

मण वयण काय[1] मा कोइ[2] जणु । पीडवहि होहि दयलीण मणु ।1।
इय[3] सुणिउ ण[4] किं जण-जंपणउ । सुहु दीणउ[5] लब्भइ अप्पणउ ।2।
तो अवरह[6] देहि[7] ण[8] दुक्खु[9] तुहु । जिम अप्पुणु पावहि परम सुहु[10] ।3।
किज्जइ णिसिभोयणु[11] परिहरणु । णिसिभोयणु[12] बहु जीवह मरणु ।4।
पोवरि[13] कप्पडि[14] जलु गालियइ । सो कप्पडु पुणु जलि खालियइ[15] ।5।
रक्खियइ पयत्तें जीवगणु । तह[16] दिल्ल ण[17] किज्जइ एक्कु खणु ।6।
जूआ[18] खेल्लणु वेसारमणु । परिहरि तह पारिद्धि[19] गमणु ।7।
णवणीउ[20] कया वि ण भुंजियइ[22] । कुसुमाइं कंद-गणु[23] वज्जियइ[24] ।8।
इय बहुविह[25] भावहि भयरहिउ[26] । जं जिह आगम जुत्तिहि[13] कहिउ ।9।
तं तिह[28]पालिज्जइ खमिय[29]मउ । सिवहेउ अहिंसा-देसवउ ।10।

घत्ता- मिच्छत्त-विसासणु[30], पाव पसासणु[31],
णिच्चाराहिय[32] जिणवयणु ।
संसार विरत्तउ, दिढ समत्तउ,
धरइ अहिंसा-वय रयणु ।1.12।

1.12 1. ग-काए । 2. ख ग-कोवि । 3. ख ग-इउ । 4. ग-न । 5. ख-दिन्नउ, ग-दीण्णउ । 6. क-अवर । 7. ग-दिहि । 8. ख ग-न । 9. ख-दुक्खु । 10. क-पाण्डुलिपि में तीसरी पंक्ति का उत्तर खण्ड नहीं है । अन्य दोनों पाण्डुलिपियों में है । 11. ग-निसिभोयणु । 12. ग-निसिभोयणु । 13. क-णीय । 14. क-खप्पड । 15. क-पुणु पक्खालियइं । 16 ख ग-तहि । 17. ग-न । 18. क ग-जूवा । 19. ख-पारद्धिहे, ग-पारद्धिहें । 20. क-लोणीउ, ग-नवणियउ । 21. ग-न । 22. ग-भुंजइं । 23 ग-कंदगणु । 24. ग वज्जिगइ । 25. क-बहुवि । 26 क-भउरहिउ, ग-वय सहियउ । 27. ख ग-जुत्तिहे । 28. ख-भंतिह । 29. ख ग-खविय । 30. क-वसासणु । 31. ख-भविय हुसासणु, ग-भविय सासणु । 32. ग-निच्चाराहिय ।

1.12

(अहिंसाणुव्रतात्मक-कर्तव्य)

दया लीन मन होकर मन, वचन और काय से कोई को भी मत पीटो (1) क्या लोगों को इस प्रकार कहते हुए नहीं सुना है कि सुख देने से अपने को भी (सुख) प्राप्त होता है (2) इसलिए तुम दूसरों को दुःख मत दो जिससे कि स्वयं परम सुख पाओ (3) रात्रिभोजन त्याग कीजिए। रात्रिभोजन से बहुत जीवों का घात (मरण) होता है (4) मोटे कपड़े से पानी छाने और छन्ने को पानी में पखार लें (5) पैरों से जीव समूह की रक्षा करें। उसमें एक क्षण की भी ढील न कीजिए (6) जुआ खेलना, वेश्यारमण करना, शिकार में जाना छोड़ो (7) नवनीत कभी भी नहीं खावे। पुष्पादि तथा कंद त्याग दे (8) इस प्रकार जो युक्तिपूर्वक आगम ने कहा है भय रहित होकर बहुत जन भाओ/पालन करो (9) मोक्ष का हेतु अहिंसा देशव्रत क्षमापूर्वक मन, वचन और काय तीनों प्रकार से पालन किया जावे (10)।

घत्ता –मिथ्यात्व विनाशक, पापों के नाशक जिनेन्द्र-वचनों की नित्य आराधना करके संसार से विरक्त होकर (और) दृढ़ सम्यक्त्व से अहिंसाव्रत रत्न धारण करो ॥1.12॥

1.13

सुणि एवहि[1] वउ वीयउ सुच्चइ[2] । वमणु असच्चु[3] कयावि ण[4] वुच्चइ[5] 11।
जं अण्हु तउ किंपि भणिज्जइ । वयणु असच्चउ किंपि[6] मुणिज्जइ[7] 12।
कूडउ कउ[8] सक्खु[9] वि ण[10]चविज्जउ[11] । चडिवि पमाणि ण[12]अलिउ कहेव्वउ 13।
कोह-माण-माया-लोहारसु । चवइ असच्चु कसाय[13] परव्वसु 14।
जो ण[14] कसायह अप्पु समप्पइ । सो ण[15] कयावि असच्चउ जंपइ 15।
जं किर सुच्चु[16]वि परपीडायरु । तं णं[17]पयंपइ वय विहि आयरु[18] 16।
करि चाडत्तण परु णिहणंतह[19] । णरयगमणु[20] सच्चु वि पभणंतह 17।
जं पर दोसु गुज्जु[21] भासिज्जइ । त ण वि णरय-णयरु[22]वासिज्जइ[23] 18।
केण वि सरिसउ जुज्झु ण किज्जइ । तहिव[24]गालि कोसणउ ण[25]दिज्जइ 19।
काणउ कुंदउ दुव्वलु णडियलु[26] । जणु ण[27] हसिज्जइ अक्खुडि पडियउ 110।

घत्ता – सव्वह जीवह हीउ, वोलिज्जइ पिउ,
जं जण सवण सुहावणउ ।
विप्पिउ कडु अक्खरु, कक्कसु णिट्ठुरु,
भासिज्जइ ण[28] भयावणउ 11.13।

1.13 1. ग-एव्वहि । 2. ख-सुचइ । 3. ख-असचु । 4. ग-न । 5. ख-वुचइ । 6. खग-तं जि । 7. ग-मुणिजइ । 8. ख-केवि । 9. ग-सचु । 10. ग-न । 11. ग-परेव्वउ । 12. ग-न । 13. क-कवाय । 14. ग-न । 15. ग-न । 16. ख-सचु, ग-सच्चउ । 17. ग-न । 18. ग-यायरु । 19. ग-निहणंतहं । 20. ग-नरयगमणु । 21. ग-गुह्य । 22. ग-नरय नयरु । 23. ग-वसिजइ । 24. खग-तहव । 25. ग-न । 26. ग-नड्डियउ । 27. ग-न । 28. ग-न ।

1.13

(सत्याणुव्रत—उपदेश)

इस समय (अब) दूसरे सत्याणुव्रत को सुनो—असत्य वचन कभी नहीं बोले (1) यदि अन्य कोई के द्वारा असत्य वचन कहा जावे या कुछ असत्य जाना जावे (2) छल पूर्ण असत्य किसी की साक्षी में नहीं कहा जावे। (जो) प्रामाणिक नहीं है (ऐसा) झूठ नहीं कहा जावे (3) क्रोध, मान, माया और लोभ (इन) कषायों के वश में होकर (जो) असत्य बोलता है (4) जो कषायों को स्वयं को समर्पित नहीं करता है, वह कभी भी असत्य नहीं बोलता है (5) निश्चय से जो सत्य परपीड़ाकारी है वह नहीं बोले और व्रतविधि को आचरे (6) चाटुकारिता करके पर का घात करता हुआ सत्य बोलते हुए भी नरक जाता है (7) जिसके द्वारा पराये गुप्त दोषों को कहा जाता है उसके द्वारा भी नरक नगर में वास किया जाता है (8) किसी के द्वारा भी क्रोधपूर्वक युद्ध न किया जावे। उसी प्रकार न कोसा जावे और न गालियां दी जावें (9) काना, कुबड़ा, दुर्बल और नृत्यकार जन-आंखों में दिखाई देने पर हँसा नहीं जावे (10)।

घत्ता—सर्व जीव हितकारी और लोगों को श्रवण-सुखद प्रिय (वाणी) बोली जावे। (इसके विपरीत) भयकारी, कटु, कर्कश और निष्ठुर वचन नहीं बोले जावें ॥1.13॥

1.14

सहसा दोसु ण[1] कासु वि दिज्जइ । कज्जु अजाणिउ संभाविज्जइ[2] ।1।
वयणु चविज्जइ[3] करिसु णिरिक्खिउ[4] । किज्जइ कज्जु सयलु सुपरिक्खिउ[5] ।2।
जं जेहउ सवणिहि णिसुणिज्जइ[6] । तं तेहउ ण[7] कयावि भणिज्जइ ।3।
णिय[8] णयणेहि[9] दिट्ठु[10] छाविज्जइ[11] । परहं दोसु णहु[12] पुणु गाविज्जइ[13] ।4।
दुव्वयणिहि[14] सिखि को[15] वि ण[16] हम्मइ । माया[17] भासहि[18] को वि ण[19] छम्मइ ।5।
अण्णु[20] कुसंगहि[21] ण[22] गवेसिज्जइ[23] । कासु वि पुणु बोलणउ ण[24] दिज्जइ ।6।
अह जइ केण वि किंपि विणासिउ । सो णवि[25] किज्जइ अइ संताविउ[26] ।7।
केण वि दुरउ सलज्जु पउत्तउ । तं पुणु उच्छल्लणहं[27] ण[28]जुत्तउ ।8।
कासु वि दुरउ ण चित्ति धरिज्जइं । कहिमि कज्जि अइगाहु ण किज्जइ[29] ।9।
भावदोस-वयणु वि वज्जिज्जइ । जणु जुज्झंतहं[30] कोड[31] ण[32] किज्जइ ।10।

घत्ता— इय वयणु असच्चउ[33], गय जण पच्चउ[34] ,
वुहहि सयावि[35] पमुच्चइ[36] ।
सब्भाव सवच्छलु, परिवज्जियच्छलु,
णिय[37] परहिउ[38] जगि वुच्चइ[39] ।1.14।

1.14 1. ग-न । 2. ख-संभासिज्जइ । 3. ग-चविजइ । 4. ग-निरिक्खिउ । 5. क ख-परिक्खिउ । 6. ग-निसुणिज्जइ । 7. ग-न । 8. ग-निय । 9. ग-नयणिहि, कख-णयणेहि । 10. कख-दिट्ठुवि । 11. ख ग-छाइज्जइ । 12. ग-नहु । 13. ख-गाइज्जइ, ग-गाइजइ । 14. ख-दुव्वइणेहि । 15. ग-सरि । 16. ग-न । 17. ग-साया । 18. क-भोसइ । 19. ग-न । 20. ग-अन्नु । 21. ख ग-कुकज्जहो । 22. ग-न । 23. ग-किहु सिज्जइ । 24. ग-न । 25. ग-न वि । 26. क ग-संतासिउ । 27. ख-उथल्लणहं । 28. ग-न । 29. ग-न किजइ । 30. क-जुज्झंतहं । 31. क-कूडु । 32. ग-न । 33. ख ग-असचउ । 34. ख-पचउ । 35. ख-सयवि । 36. ख-पमूचइ । 37. ग-निय । 38. क-परिहउ । 39. ग-वुच्चेइ ।

1.14

(दैनिक व्यवहार में बोलचाल सम्बन्धी चिंतन)

अज्ञानता में कार्य होने की सम्भावना की जावे, सहसा किसी को भी दोष न दिया जावे। (1) देख-भालकर वचन बोला जावे (और) भली प्रकार परीक्षा करके सभी कार्य किये जावें (2) जो जैसा कानों से सुना जावे वह वैसा भी नहीं कहा जावे (3) अपनी आँखों से पराये दोष देखकर गाये न जावें, ढाँके जावें (4) दुर्वचन रूपी बाण से किसी को भी न घाता जावे। कपटमय भाषा बोलनेवाले को कोई भी क्षमा नहीं करता है (5) अन्य कुसंग की खोज न की जावे। किसी को फिर बोलने न दिया जावे (6) अथवा यदि किसी के द्वारा कुछ विनाश किया जाता है (तो) वह अधिक सन्तापित न किया जावे (7) किसी के द्वारा बुरा लज्जास्पद उत्तर दिया जावे तो उस पर उछलना ठीक नहीं (8) हृदय में किसी का भी बुरा धारण न किया जावे। कथित कार्य में अतिग्रहण न किया जावे। (9) भावदोषकारी वचन भी त्यागे जावें। सन्त जनों से कूट वचन न बोला जावे (10)।

पता—गत जनों द्वारा पचाया गया असत्य वचन बन्धुजनों द्वारा सदैव त्यागा जावे। छल कपट त्यागकर वात्सल्य स्वभावी वे संसार में निज परहित के लिए बोलते हैं ॥1.14॥

1.15

अह जइ दोसु कोवि तुव देसइ । हुंतउ अणहुंतउ जि भणेसइ ।1।
अह णिट्ठुर[1] दुव्वयणिहि[2] तावइ । वम्मुल्लूरणु गालिउ दावइ ।2।
कडु[3] अक्खरहि[4] घरिणि[5] णिब्भंसइ[6] । णिच्च वि पोसणु-भरणु समिच्छइ[7] ।3।
दुव्वंधउ दुपुत्तु मणि[8] कुद्धउ[9] । णिद्धाडइं[10] बोलंतु विरुद्धउ[11] ।4।
अह अवरोवि[12] कोवि उवहासइ । जइ रुद्धा जणेरि इम[13] भासइ ।5।
जइ घर माणसु तुव विग्गोहइ[14] । चाडु णरेसहु[15] मारण ढोवइ ।6।
इय चिर कय पावें संपज्जइ । सव्वु वि सम भावेण खमिज्जइ[16] ।7।
दूसहु पर खर वयणु सहंतहं[17] । हुइ पावखउ णरहं[18] महंतहं[19] ।8।
सोत्ते[20] तडउ दुक्खु पुहु अग्गइ[21] । पढमउ सग्गु पुणु वि पंचमगइ ।9।
अह ण[22]खमइ तउ दुक्खु भयंकरु । सहइ कोइ कय कम्म परंपरु ।10।

घत्ता— गव्वियहं अगव्वहं, जीवहं सव्वहं[23],
छुड आलाउ ण[24] किज्जइ[25] ।
पर कियउ विसेसें, मुक्क किलेसें,
अप्पुणु सव्वु खमिज्जइ ।1.15।

1.15 1. ग-निट्ठुर । 2. ग-दुव्वयणें । 3. क-कुडु । 4. ख-अक्खरहि, ग-अक्खरहि । 5. ग-घरिणि । 6. ग-निब्भंसइ । 7. ख ग-समिच्छइ । 8. ख-मणें । 9. ख-कुधउ । 10. ख-निधाडइ । 11. ख-विरुधउ । 12. ख-अवरोकि । 13. ख-इउ । 14. ख ग विगोवइ । 15. ख-णरेसहो, ग-नरेसहो । 16. ग-खमिजइ । 17. क-सहिज्जइ । 18. ग-नरहं । 19. ग-सहंतहं । 20. क-सोत्ते । 21. ख-दुक्खुहु । 22. ग-न । 23. क-पाण्डुलिपि में यह अंश - "जीवहं सव्वहं" नहीं है । 24. ग-न । 25. ख ग-दिज्जइ ।

1.15

(पर कृत अभद्र व्यवहार कालीन कर्तव्य)

अथवा यदि कोई तुम्हें दोष देता है और होनी-अनहोनी कहता है, (1) अथवा निष्ठुर दुर्वचनों से संतप्त करता है, वर्म-छेदी गालियां देता है (2) घरवाली-कड़वे अक्षरों से निरुत्तर कर देती है (वह) निश्चय से भली प्रकार भरण-पोषण चाहती है (3) दुष्ट-पुत्र मन में कुपित होकर विरुद्ध वचन बोलते हुए बुरी तरह बांधकर बाहर निकाल देता है (4) अथवा इतर कोई भी उपहास करता है, यदि माता-पिता के विरुद्ध कहता है (5) यदि घर के लोग तुझे छिपा लेते हैं, राजा के चाटुकार मारने ले जाते हैं (6) इस प्रकार (ये बाधाएँ) पूर्वोपार्जित पापों से प्राप्त होती हैं। सम परिणामों से सभी को क्षमा किया जावे (7) पराये दुस्सह्य कठोर वचन सहते हुए मनुष्य के महान् पापों का क्षय होता है (8) आगे (उन) दुःखों और सुखों का विस्तार स्रोत प्रथम स्वर्ग पश्चात् पंचम गति (होता है) (9) अथवा (जो) क्षमा नहीं करता है (वह) क्रोध कृत कर्म-परम्परा से भयंकर दुःख सहता है (10)।

घत्ता—गर्वपूर्वक या मान रहित होकर सभी जीवों को छोड़कर मिथ्यालाप न कीजिए। विशेषकर दूसरों पर कृपा करने से (उन्हें) क्लेश मुक्त करने से अपने को सभी के द्वारा क्षमा किया जाता है ॥1.15॥

1.16

अप्पउ[1] णवि[2] सलहणु चाहिज्जइ[3] । अवरहं पुणु सुहु[4] गुणु[5] स लहिज्जइ ।1।
कासु वि अण-उवयारु ण[6] किज्जइ[7] । पर उवयारु लहु वि मणिज्जइ[8] ।2।
जीवहं[9] जिणप्पहु उवएसिज्जइ[10] । पाउ-करंतु धम्मि[11] लाइज्जइ[12] ।3।
तेवंचिय[13] जिणणाहु-थुणिज्जइं[14] । परमागम[15] वक्खाणु[16] सुणिज्जइ[17] ।4।
इय अणेय भावहि[18] वउ बीयउ । रक्खिज्जइ जिह आगमि[19] गीयउ ।5।
एवहि[20] तिज्जउ[21] कहिमि[22] अणुव्वउ[23] । परधणु णवि[24] भव्वेण हरिव्वउ[25] ।6।
धरिउ-पडिउ-वीसरिउ-णिहित्तउ[26] । किंपि वि वत्थु[27] जं जि परु[28] घित्तवु ।7।
अहुच्छंडिउ अह घरि[29] संपायउ[30] । अप्पु-वहुसु वि भो ले[31] आयउ ।8।
कूडु[32] करेविणु लेवइ वाहिवि । हठु करि को वि मरंतउ चाहिवि ।9।
पर-पहूत्थु[33] किंचि वि ण[34] लइज्जइ । अण दिण्णउ सयलु वि वज्जिज्जइ[35] ।10।

घत्ता— धणु कणु मणि[36] सारउ, परहु[37] गियारउ
दुप्पय चउपय[38] मणिरयणु ।
तिण समु मण्णिव्वउ[39], तं ण[40] हरिव्वउ,
आराहंतह जिण-वयणु ।।1.16।।

1.16 1. ख ग-अप्पहु । 2. ग-न वि । 3. क-चाहिज्जइ, ग-चाहिज्जइ । 4. क-सहु । 5. क-गुण । 6. ग-न । 7. क-किज्जइ, ग-किजइ । 8. क-माणिज्जइ, ग-मणिजइ । 9. क ख-जीवह । 10. क-उवएसिज्जइ । 11. ख-धमि । 12. क-लाइज्जइ, ग-लाइजइ । 13. ग-तिहि सज्झहि । 14. क-थुणिज्जइ । 15. ख-परमागम । 16. ख-वखाणु । 17. क-सुणिज्जइ । 18. ख ग-भावहि । 19. ख-आगमें । 20. ख-एव्वहि । 21. ग-तीजउ । 22. ख-कहमि । 23. ख-अणुव्वय । 24. ग-न वि । 25. ख-हरेव्वउ । 26. ग-निहित्तउ । 27. ख-वथु । 28. ख ग-पर । 29. ख-घरे । 30. ख ग-संपाइउ । 31 ख-लइ । 32. ग-कूड । 33. ख-ममथु, ग-दवत्थ । 34. ग-न । 35. क-वज्जिज्जइ, ग-वजिजइ । 36. ग-माणि । 37. क-परहो । 38. ख-चउप्पह । 39. क ग-मणिव्वउ । 40. ग-न ।

1.16

(सत्याणुव्रत के लिए आवश्यक आचार और अचौर्याणुव्रत सम्बन्धी विचार वर्णन)

अपनी प्रशंसा नहीं चाही जावे और दूसरों के शुभ गुण वह प्राप्त करे (उसके द्वारा प्राप्त किये जावें (1) किसी का भी अनुपकार नहीं किया जावे। दूसरों से उपकार पाकर माना जावे (स्वीकार किया जावे) (2) पाप करते हुए जीवों के लिए स्वामी जिनेन्द्र का उपदेश दिया जावे और धर्म में लाया जावे (3) इस प्रकार जिननाथ की अर्चना करके स्तुति की जावे। परमागम का व्याख्यान सुना जावे (4) इस प्रकार जैसा आगम में गाया गया है (कहा गया है) अनेकों भावों से दूसरा व्रत रखा जावे (धारण किया जावे) (5) इस प्रकार तीसरे अणुव्रत को कहता हूँ। भव्य-पुरुष के द्वारा पराया धन नहीं हरा जावे (6) रखी हुई, गिरी हुई, भूली हुई, स्थापित, दूसरों से प्राप्त, अथवा छोड़ी हुई अथवा घर में प्राप्त अल्प या बहुत किसी भी वस्तु को बहियों में कूट लेखन करके हठपूर्वक किसी का मरण चाहकर भी किंचित पर वस्तु नहीं ली जावे। बिना दिया हुआ सब त्यागा जावे (7–10)।

घत्ता—दूसरों के लिए प्रिय-धन-धान्य, सारस्वरूप मणि, द्वि पद (मनुष्य), चतुष्पद जानवर, मणि-रत्न, तिनके के समान (तुच्छ) मानें, उनकी नहीं चुरावें, जिनेन्द्र के वचनों को आराधें ॥1.16॥

1.17

परहु[1] पयत्थु कहिमि जिण[2] सुंदरु । कप्पडुराच्छु तुरउ णरु मंदिरु ।1।
मग्गिउ अह मुल्लेण ण[3] लब्भइ । पर दव्वहु[4] भव्वे णउ[5] लुब्भइ[6] ।2।
लोहमूलु चोरत्तणि[7]-गम्मइ । पठमउ लोहु वि[8] तं जिणहम्मइ ।3।
सज्झिउ[9] णरु ण[10] कोवि वज्जिज्जइ । इट्ठु मित्तु करि कोण[11] दुहिज्जइ ।4।
णवि[12] कासु वि अहियारु[13] हरिज्जइ[14] । करि[15] चाडुत्तणु[16] किंपि ण[17] लिज्जइ[18] ।5।
भायउ पुत्तु पियरु वंचेविणु । सणइ सणइ गेहहो संचेविणु ।6।
णियज[19] कुडुंवहो[20] धणु ण[21] हरिव्वउ[22]। घर विहिम्णु भंडारू ण[23] किज्जइ ।7।
एक्कहो हरि वि ण[24] अण्णहु[25] दिज्जइ । णवि णिय[26] दोसु पर हो लाइज्जइ ।8।
कावि हाणि अप्पहो आवंती । सा पर सिरि वुच्चइ[27] ण तवंती[28] ।9।
रायदंडु जं किर णिय अंसहो[29] । तण्ण[30] चडाविज्जइ पर सोसहो ।10।
रायकराउणिवंधु करंतिहि । भाउ[31] दोसु मुच्चइ सम चित्तहि[32] ।11।

घत्ता—लच्छो खय हासु वि, भुवणि[33] ण[34] कासु वि,
किज्जइ ण वि[35] चिंतिज्जइ ।
राउलि[36] दंडिज्जइं, चोर मुसिज्जइं,
इम कासु वि ण कहिज्जइ ।।1.17।।

1.17 1. ख ग-परहो । 2. ख ग-जण । 3. ग-न । 4. ख ग-दव्वहो । 5. ग-नउ । 6. ख ग लब्भइ ।
7. क-चारत्तणि, ग-चोरत्तणु । 8. ग-जि । 9. ख-साज्भिउ, ग-सज्झेउ । 10. ग-नरु न । 11 ग कोन ।
12. ग-न वि । 13. खग-अधियारु । 14. ख-हरेव्वउ, हरिव्वउ । 15. खग-करि वि । 16. खग-चडावउ ।
17. ग-न । 18. ख-लेवउ, ग-लेव्वउ । 19. ख-णियउ, ग-नियय । 20. ख-कुटुंवहु । 21. ख-णि, ग-न ।
22. ख-हृण्विवइ, ग-हरिजइ 23. ग-न । 24. ख-हरेविण । 25. ग-अन्नाहो । 26. ग-निय । 27. ख ग-मुच्चइ । 28. ग-नतवंतो । 29. क-णिअयंसहु । 30. ग-तं न । 31. ख-भाव । 32. ग-चितिहि ।
33. क-भवणि । 34. ग-न । 35. ग-न वि । 36. ग-रावलि ।

1.17

(अचौर्याणुव्रत सम्बन्धी व्यावहारिक चिन्तन और लक्ष्मी-स्वभाव-व्याख्यान)

(हे) भव्य पुरुष ! कहता हूँ (कवि कहता है)—दूसरों से पदार्थ—उत्तम कपड़ा, तुरंग, मनुष्य, महल (आदि) पदार्थ (1) मांग कर अथवा मूल्य से (यदि) नहीं पाता है (तो) पर द्रव्य से भव्य पुरुष द्वारा लुभाया नहीं जावे (2) चोरी के लिए जाने में मूल (कारण) लोभ (है) उस लोभ को जिणमन्दिर में पढो (3) साझेदार मनुष्य को कोई भी नहीं ठगे (धोखा देवे) । इष्ट मित्र बनाकर उसे कौन दुखाता है ? (4) किसी का अधिकार भी नहीं हरा जावे, खुशामद करके कुछ भी न लिया जावे (5) भाई, पुत्र, पिता को ठगकर (और) धीरे-धीरे घर का संचय करके (6) अपने कुटुम्ब का धन नहीं हरे (क्योंकि) घर-विहीन के द्वारा भण्डार नहीं किया जाता है (7) एक का हरकर दूसरों को नहीं दिया जावे । अपना दोष भी दूसरों के (पर) नहीं लाया जावे (8) आती हुई अपनी किसी भी हानि को संतप्त होते हुए पराये सिर पर नहीं कही जावे (9) निश्चय से अपने राजदण्ड के अंश को दूसरों के सिर से नहीं चढाया जावे (सिर पर नहीं स्थापित किया जावे) (10) राजकीय वचन (स्वीकृति) का लेखन कार्य करते हुये समचित्त से भाव दोष छोड़ो ।

घत्ता—लक्ष्मी-क्षयशील और ह्रासवान् है । संसार में किसी की भी नहीं है । चिन्ता नहीं की जावे । राजकुल में दण्डित की जाती है, चोरों द्वारा चुराई जाती है, यह किसी की भी नहीं कही जाती है (गयी है) ॥1.17॥

1.18

जइ लहणउ कासु वि पास[1] धणु । मंगियउ सुहेण ण[2] लहइ[3] पुणु ।1।
तउ[4] बंधिवि[5] लंधाइवि[6] घणउ । ण वि[7] लिज्जइ जइ विहु[8] अप्पाणउ[9] ।2।
धरतुय देक्खंतु वि[10] धरिणउ । तहं विहु उच्चेडइ[11] णिग्घिणउ[12] ।3।
णिय[13] दव्वु वि लितहं तासु[14] मलु । थिर वयच्छंडेविणु[15] महइ[16] चलु ।4।
पीडिवि ण लेइ तहो खमइ जइ । ता होइ साहु सुरलच्छिमइ[17] ।5।
अह लेइ[18] विराहिवि खमइ णवि । तउ दुक्खिउ[19] णिद्धणु भवि[20] जि भवि ।6।
घर कम्मुकरावइ[21] किंपि वहु । कासु वि धणु दिज्जइ तुच्छुएहु[22] ।7।
जइ कासु वि थवणी[23] रहइ धरे । गउ काल वि पज्जइ[24] देस पुरे ।8।
तउ[25] तहो[26] संताणिजि[27] को वि हुउ । तहो लच्छिगु सायउ घरिणि सुउ ।9।
तह[28] दिज्जइं जण किवि साक्खि लए[29] । अहवा इह[30] जुत्ति न[31] होइ जइ ।10।
जिण[32] पयड[33] धम्मि[34] तउलाइयइं[35] । णिय बुद्धि हेतु[36] संभावियइ ।11।

घत्ता—मुसियउ चोरेण वि, अह जइ केण वि,
दंडु समग्गलु तउ कियउ ।
चिंतइ णवि रुवउ[37], तहो खय रूवउ,
खमहि कोहु करि[38]दिढु हियउ ।1.18।

1.16 1. ख ग–पासि । 2. ग–न । 3. खग-मिलइ, क–लहइ । 4. खग–तो । 5. ख–बंधेवि । 6. ग–लंघाएवि । 7. ग–न वि । 8. ग–धणु । 9. खग–अप्पणउ । 10. ख–धरतु टोईसंतु वि, ग–पुरतही देक्खंतुवि । 11. कख–उचेडइ । 12. ग–निग्घिणउं । 13. ग–निय । 14. खग-पाव । 15. खग–छंडेवि । 16. खग–गहइ । 17. यह यमक 'क' पाण्डुलिपि में नहीं है । 18. ख–लेइ । 19. ग–न वि । 20. ग–भवे । 21. ख ग–कराइवि । 22. ग–नहु । 23. ख–थंपणि । 24. खग-पज्जउ । 25. खग–तो । 26. ग–तहु । 27. ख–संतणेजु, ग–संताणिज । 28. ख–तहो, ग–तहु । 29. खग–लइ । 30. ख ग–यह । 31 ख–ण । 32. खग–जण । 33. ख–पयडु । 34. खग–धम्मे । 35. ख–तोलाइयइ, तोलाइयए । 36. ख–बुधिहे इउ, ग–बुद्धिहि इउ । 37. ग–रूवय । 38. ग–तो वि ते विढुकार ।

1.18

(अचौर्याणुव्रत के अन्तर्गत ऋणी के प्रति साहूकार का तथा नौकर का मालिक के प्रति कर्तव्य तथा धरोहर सम्बन्धी चिन्तन)

यदि किसी के पास से धन लेना है (तो) सुख (सरलता) से मांगो, फिर नहीं मिलता है (1) यदि धन अपना है तो बांधकर, सघन लंघन करा कर नहीं लिया जावे (2) धनिक (उसे) (धन) धरते हुए देखकर भी मुंह फेर लेता है। उससे घृणा (मत) करो (3) अपना द्रव्य लेते हुए भी उसके दोष (लगता है) स्थिर दया का त्याग किए बिना आदर करता चले (4) यदि साहूकार (ऋणी) को पीड़ा देकर (धन) नहीं लेता है, क्षमा कर देता है तो साहूकार दैव-लक्ष्मीवान् होता है (5) अथवा क्षमा नहीं करता है, विराधित करके (कर्ज) लेता है तो भव भव में निर्धन (होकर) दुःखी (होता है) (6) घर काम करने आनेवाले किसी छोटे (कर्मचारी) को भी कुछ (या) बहुत धन दिया जावे (7) यदि किसी की धरोहर घर में रहती है (और वह) देश में नगर में काल को प्राप्त हो गया (मर गया) (8) तो उसकी जो कोई भी स्त्री, पुत्र-सन्तान हो, उसकी लक्ष्मी को भोगे (9) किसी जन को साक्षी में लेकर वह लक्ष्मी (उसे) दे दी जावे। अथवा यदि यह ठीक न हो (तो) (10) जैनधर्म में उसे लाकर प्रकट (करे) (और) अपनी बुद्धि से संभावित करे (11)।

घत्ता—चोर के द्वारा चुराये जाने पर भी, अथवा यदि किसी के द्वारा दण्ड देकर (लक्ष्मी) समाधिक को की गयी तो भी प्रत्यक्ष में चिन्ता नहीं करे। उसके प्रत्यक्ष क्षय (होने पर) हृदय दृढ करके क्रोध को क्षमा करो (क्रोध) नहीं आने दो ॥1.18॥

1.19

णं[1] वि कासु वि चोरी लाइज्जइ । वत्थु पराई णं[2] वि तक्किज्जइ 11।
परधणु अह णिय[3] धणु वि हरंतउ[4] । जइ दिट्ठउ णरु[5] को वि मरंतउ[6] 12।
चोरु भणेवि[7] तउ[8] णवि[9] गोविज्जइ । मउणु[10] करेविणु हाणि खमिज्जइ 13।
अह कला सिलिज्जइ तउ[11] लिज्जइ । एम करंत ण वरमुच्छिज्जइ 14।
संगु ण किज्जइ चोर समाणउ । मउल[12] ण लिज्जइ चोर किराणउ 15।
राय विरुद्धु सयलु वज्जिज्जइ । होणाहिय तुलमाणु[13] ण किज्जइ 16।
भंडि कुभंडि ण[14] मीसणं जुत्तउ । णाडी[15] भक्खणु[16] पाउ महंतउ 17।
अह जइ घणु पुणु कासु वि दिण्णउ[17] । तुच्छु बहुत्तु वि णवउ[18] चिराणउ 18।
तं णवि[19] अत्थि घरहं यं दिज्जइ । तह विसया वि देण मइ किज्जइ 19।
साहु कियउ उवसग्गु खमिज्जइ । विग्गोवइ तउ[20] मण्णाविज्जइ 110।

घत्ता—जं जं किल पुज्जइ, तं तं दिज्जइ,
सीलु[21] देण चाहिज्जइ ।
देसमि इउ वुच्चमि[22], सीलु ण[23] मुच्चमि[24],
मिच्छ कयावि ण[25] किज्जइ ।1.19।

1.19 1. ग-न। 2. ग-न। 3. ग-निय। 4. ग-वहिरंतउ। 5. ग-नरु। 6. ख-मइंतउ, ग-महंतउ। 7. ग-भणिवि। 8. खग-तो। 9. ग-न वि। 10. ग-मोणु। 11. ख ग-तरु। 12. ख-मोल्लि, ग-मेल्लि। 13. ग-न। 14. ग-न। 15. ग-नाडी। 16. ग-भक्खणि। 17. ख ग-देणउ। 18. ग-नवउ 19. ग-ते न वि। 20. खग-तो। 21. खग-सेसु। 22. ख-वुचइ, ग-वुच्चइ। 23. ग-न। 24. ख-मुचइ, ग-मुच्चइ। 25. ग-न।

(अचौर्याणुव्रत सम्बन्धी अतिचारात्मक चिन्तन)

किसी की चोरी (चुरायी गयी वस्तु) नहीं लायी जावे (और) न पराई वस्तु ताकी जावे (1) पराया अथवा अपना धन चुराते हुए यदि कोई महान् पुरुष दिखाई देता है, तो उसे चोर नहीं कहकर छिपा लिया जावे। मौन रहकर हानि क्षमा की जावे (3) चन्द्रकला-शिला पर (और) वृक्ष पर जाती है। ऐसा करते हुए (वहां जाते हुए उसे) वर्मा से नहीं छेदा जाता (4) आना-जाना चोर के साथ नहीं किया जावे। चोर के द्वारा लायी गयी वस्तुएँ मोल नहीं ली जावे। (5) राज्य विरुद्ध सब त्यागा जावे। हीनाधिक माप-तौल न की जावे (6) चोखे बर्तनों में खोटे-बर्तनों का मिश्रण ठीक नहीं। नसों (हड्डियों) के भक्षण में महान पाप है (7) अल्प या बहुत, नया या पुराना किसी का धन देना, अथवा जो धर का नहीं है वह देना (इसमें) विष देने की कल्पना की जावे (8–9) किए हुए उपसर्ग को साहूकार क्षमा करे, (यदि ऋणी) रहस्य विगोपन करता है तो मना किया जावे (10)।

घत्ता—निश्चय से जो-जो पूजता है (अपने पास है) वह दिया जावे, शेष देने की इच्छा की जावे। दूंगा इस प्रकार कहे, शील नहीं छोड़े, मिथ्या व्यवहार कभी भी नहीं किया जावे ॥1.19॥

1.20

रिण संबंधे[1] एउ[2] करंतहं । पाउ[3] ण[4] लग्गइ पंजलि[5] चित्तहं ।1।
पाउ[6]-हीणु जहि कहि उप्पज्जइ । तहि रिणच्छेयरण[7] खमु संपज्जइ ।2।
रिणु मोडिव्वइं[8] जणु मइं वट्टइ । सो भवि भवि दुक्खिहिं[9] ग्रावट्टइ ।3।
ग्रह तुव घणु वलिवंडइ केण वि । लयउ कयावि कुसील वलेण वि ।4।
भुट्ठउ[10] भगड़उ ग्रलिउ धरेविणु । वीसासिवि[11] पुणु बंधु करेविणु ।5।
तहवि तासु मा वुरहउं चिंतहि । मट्ठु एरिसु मवीसु इउ[12] मंतहि ।6।
ग्रवसु ग्रासिमइं एउ विराहिउ । एवहि एव[13] वयणु तं साहिउ ।7।
एउ चिंतवि तिणि सहु खम किज्जइ । हउ फेडिउ ग्रमु केण ण गिज्जइ ।8।
एवमाहि[14] सुंदरु मणि[15] भावहि । जिम चिरु सूरहि[16] ग्रप्प सहावहि[17] ।9।
वउ पालिज्जइ तेम पयत्तें । माया लोह कसाय कयंत्ते ।10।

घत्ता—जिण मुणि[18] ग्राएसहु जा किर देसहु[19]
विरइ ग्रदत्तावाणहो ।
तं तोमउ ग्रणुव्वउ[20], विहुव वलिव्वउ[21],
पंथु परम णिव्वाणहो ।1.20।

इय ग्रप्प संवोह कव्वे । सयल जणमण सुहंकरे । ग्रव्वला बाल सुहु वुज्भ पयत्थें । पढमो संधी परिच्छेग्रो सम्मत्तो (संधि 1) ।

1.20 1. ग-संबंधहु । 2. ख-एव । 3. ख-पाव । 4. ग-न । 5. ख-पंजइ, ग-पंजल । 6. खग-पाव । 7. क-रिणच्छेण । 8. ख-रिणि मोडेव्वय । 9. खग-दुक्खेहि । 10 ख ग-दुट्ठउं । 11. खग-वीसासेवि । 12 ग-एउ । 13. ख ग-एण । 14. खग-एव माइं । 15. ख-वउ, ग-वहु । 16. खग-सूरिहि । 17. खग-कहिउ अपावहि । 18. ग-आएसहो 19. खग-देसहो । 20. खग-तं तोयाणुव्वउ । 21. ख-वलेव्वउ, ग-वेलेव्वउ ।

1. खग- सवण सुहंकरे । 2. खग-अवला । 3. ख-पदयत्थें ।

1.20

(साहूकार का ऋणी के प्रति सद्-व्यवहारात्मक चिन्तन)

ऋण के सम्बन्ध में इस प्रकार करते हुए सरल चित्त के (को) पाप नहीं लगता है (1) पापहीन जहां कहीं उत्पन्न हो जाता है। अतः क्षमापूर्वक ऋण छेदन किया जावे (2) ऋण के मोड़ने/भग्न करने में जिसकी बुद्धि प्रवर्तित होती है, वह भव-भव दुःखों से (दुःखपूर्वक चक्र के समान) परिभ्रमण करता है (3) अथवा तुम्हारा धन कभी किसी कुशील बलवान के द्वारा लिया गया (4) मिथ्यारोप करके झूठा झगड़ा किया गया (तो) विश्वासपूर्वक बन्धुता करके (5) इतना होने पर भी उनके लिए बुरा मत चितो। मेरा ऐसा ही भविष्य है—इस प्रकार परामर्श करो (6) इस प्रकार (ऐसा करने से) विराधित जन अवश्य आशीष देंगे। इस प्रकार यही वचन है उसे सिद्ध करो (7) ऐसा विचार कर उन पर (ऋणी पर) साहूकार के द्वारा क्षमा की जावे। मैंने विनाश किया यह किसी के द्वारा नहीं गाया जाता (कहा जाता) (8) इस प्रकार जैसा पूर्वाचार्यों द्वारा (कहा गया है) मन में सुन्दर/शुभ आत्म-स्वभाव भाओ (9) माया, लोभ (आदि) कषायों का अन्त करते हुए प्रयत्नपूर्वक उसी प्रकार व्रत पाले जावें (10)।

घत्ता—जिन मुनियों के आदेश (और) देशना से (कवि) अदत्तादान (अणुव्रत) को रचना करता है। निर्वाण के परम पंथ उस तीसरे अणुव्रत को दृढ़ता से बसाया जाना चाहिए ॥1.20॥

इस आत्म सम्बोध काव्य में सभी जनों के मन को सुखकर अबला-बाल जनों के सुख रूपी जल प्रवाह में प्रवाहित पदार्थ वाला प्रथम परिच्छेद पूर्ण हुआ। (संधि)।

द्वितीय परिच्छेद

ध्रुवक (31 मात्रिक) अ

सम्मइ-तित्थंकरु, तिजय-सुहंकरु,
परमाणंदुल्लासयउ ।
वंदमि[1] परमप्पउ, बोहमि[2] अप्पउ,
पुणु बुज्झइ[3] वि बंभवउ (छ)

2.1

वउ चउत्थु भासमि जग बंधुरु[4] । बंभचेरु नर-नारिहिं[5] दुद्धरु[6] ।1।
णिरु णिवित्ति जा सुरय[7] पसंगहो । तं जि बंभवउ णिहयाणंगहो[8] ।2।
जं दिवसहो[9] मेहुणु[10] णियमिज्जइ[11] । तुरियाणुव्वउ तं भासिज्जइ[12] ।3।
पुरिसिहिं[13] पर तिय संगु ण किज्जइ[14] । णारिहि णवि[15] पर पुरिसु रमेव्वउ ।4।
खरमयणग्गिताउ असहंतहं[16] । तिय[17] पुरिसिहिं[18] उम्माइय चित्तहं[19] ।5।
वउच्छंडिवि जं सुरउ रमिज्जइ । सु णरु[20] तेण भवगहणु भमिज्जइ ।6।
तो वरि सीलुभारुज्जइ दुव्वहु । णिसिय[21] सरहिं जइ पीडइ वम्महु ।7।
तउ मुच्चइ पर णर[22] तिय संगमु । इच्छंतेहिं[23] भवदुक्खहि णिग्गमु ।8।
जो पुणु सील रयणु णरु[24] भंजइ । सुरय रमणि अप्पाणउ गंजइ ।9।
तिय णरु रइ-रसु[25] मुइवि ण सक्कइ । सो संसारि[26] भमंतु ण थक्कइ ।10।

घत्ता—रइ रमणु[27] णिसुंभइ[28], णिम्मल बंभइ[29]
रसणु[30] किज्जइ आयरेण ।
उवसमु मणि[31] संचि वि[32], णिय मणु खंचिवि,
झाडिज्जइ कलिमलु णरेण ।।2.1।।

अ. अपभ्रंश भारती, जुलाई 1992, अंक-2, पृष्ठ 87।

2.1 1. खग-वंदेवि । 2. क-बोहम्मि, ग-बोहिमि । 3. ख-बुज्झाए, ग-बुज्झाइ । 4. ग-बंधव । 5. ख-णर णारिहि । 6. ख-दुद्धव । 7. क-जसुराय । 8. ख-णिहि भयंगहो । 9. ग-देसहु । 10. ख-मेहुण, ग-मिहुणु । 11. ग-नियमिज्जइ । 12. ग-भासिज्जइ । 13. ख-पुरिसेहिं । 14. ख-किज्जइ । 15. ग-नारिहि नवि । 16. ख-असहंतेहि, ग-असहंतहि । 17. ग-तिइ । 18. ख ग-पुरिसहि । 19. खग-चित्तेहि । 20. ख-सुत्तरु, ग-सुइरु । 21. ग-निसिय । 22. यह शब्द 'क' पाण्डुलिपि में नहीं है । 23. खग-इच्छंतिहि । 24. ग-नरु । 25. ख-रयरसु । 26. ख-संसारे । 27. क-रमणि । 28. खग-णिसुंभइ । 29. ख-बंभहो, ग-बंभइ । 30. ख-रक्खणु, ग-रक्खेणु । 31. खग-तणे । 32. खग-संचेवि ।

द्वितीय सन्धि

(ध्रुवक)

तीनों लोकों का सुख करनेवाले, परमानन्द (और) उल्लासमय परमात्मा तीर्थंकर सन्मति की वन्दना करता हूँ, पश्चात् ब्रह्मचर्याणुव्रत से आकर्षित होकर स्वयं को सम्बोधता हूँ।

2.1

(ब्रह्मचर्याणुव्रत—स्वरूप और उसका फल)

नर (और) नारियों के द्वारा कठिनाई से निर्वाह किए जाने योग्य चौथा व्रत (ब्रह्मचर्याणुव्रत) जगत के बन्धुओं को कहता हूँ (अथवा ब्रह्मचर्य से जगत को बांधने के लिए चौथा व्रत कहता हूँ) (1) मैथुन प्रसंग की जिसको निवृत्ति है निश्चय से उस काम निहत के ब्रह्मचर्य है (2) जो (जिसके द्वारा) दिन के मैथुन का नियम किया जाता है उसे (उसके) चौथा अणुव्रत कहा जाता है (3) पुरुषों के द्वारा पर स्त्री-संग नहीं किया जाना चाहिए (और) स्त्रियों के द्वारा भी पर-पुरुष नहीं रमने चाहिए (3) तीव्र मदनाग्नि ताप को नहीं सहते हुए उन्मादित चित्तवाले जिस स्त्री पुरुष के द्वारा व्रत भंग करके जो मैथुन-रमण किया जाता है उस मनुष्य (और स्त्री) के द्वारा गहन संसार-भ्रमण किया जाता है (5–6) इतने पर भी यदि शील-भार दुर्वह है, रात्रि में यदि काम-बाण द्वारा पीड़ा दी जाती है तो भी भव दुःखों में से निर्गमन की इच्छा करनेवालों के द्वारा पर-स्त्री (और) पर-पुरुष संगम छोड़ा जावे (7-8) इसके पश्चात् जो मनुष्य शील-रत्न को तोड़ता है/विनाशता है (वह) मैथुन-रमण में स्वयं को अपमानित करता है (9) (जो) स्त्री-पुरुष रति रस नहीं छोड़ सकता है, वह संसार में भ्रमते हुए नहीं थकता है (वह भव-भ्रमण करता है) (10)।

घत्ता—(जिसके द्वारा) रति-रमण नष्ट किया जाता है और आचार द्वारा निर्मल ब्रह्मचर्य का रसास्वादन किया जाता है (उस) मनुष्य के द्वारा अपने तन, मन का संकोच करके उपशमपूर्वक पाप झड़ाये जाते हैं ॥2.1॥

2.2

वज्जिजइ तिय-वयणु णिरिक्खिणु[1] । तह वस काम वियार कडक्खणु ।1।
तियस रूउ णिय मणि चिंततहं । कह णारिहिं णिसुणंत कहंतह ।2।
तम भरि णिसिहिं मिलंतहं णिज्जणे । एक्क पएसे वसंतहं जोव्वणे[2] ।3।
मणु-वय-तणु वे हइ मयरद्धउ । सुक्खु ण लहइ जेण जण-विद्धउ[3] ।4।
रइ-रसु रमइ सीलु भंजंतउ । भववणि भमइ दुक्खु भुंजंतउ ।5।
इउ जाणिवि पर तिय वज्जिज्जइ । भिण्ण वयणु रइ हासु ण[4] किज्जइ ।6।
सुरय-रसाहिलासु तणु फंसणु । पहि सह गमणु एक[5] सयणासणु ।7।
दिट्ठ णारि[6] पुणु वलिवि णिरिक्खणु[7] । लोय मिलानइ तणु संघट्टणु ।8।
हियइ[8] णिहालणु[9] चित्त समप्पणु । वाणु संगु मुहरसु तणु चप्पणु[10] ।9।
इय भावइ प्रवरइमि प्रसेसइ । तिविहि परिवज्जहि णीसेसइ ।10।

घत्ता— वय भंगहो[11] कारण[12], सील णिवारण[13]
इय वहु विह प्रवरे वि पुणु ।
ण[14] वि जेहिं वि मुच्चहि, तें वि वि गुच्चहि,
इह भवि परभवि बंभ विणु ।।2.2।।

2.2 1. ग-निरिक्खणु । 2. क-पाण्डुलिपि में यह यमक नहीं है । ग-जोव्वणि । 3. यह यमक भी 'क' पाण्डुलिपि में नहीं है । 4. ग-न । 5. क-एवि, ग-एक्क । 6. ग-नारि । 7. ग- निरिक्खणु । 8. ख-हियय । 9. ग-निहालणु । 10. ख-चंपणु । 11. क-संगहु । 12. क-कारणें । 13. क-णिवारणें । 14. ग-न ।

2.2

(ब्रह्मचर्याणुव्रत हेतु हेयात्मक चिन्तन)

स्त्रियों के वचन (श्रवण), (उनका) निरीक्षण (और उनके) काम-विचार सम्बन्धी कटाक्ष के वश में होना त्याग दिया जावे (1) स्त्री-सौन्दर्य को अपने मन में विचारते हुए (और) नारियों द्वारा कही जाती हुई कथाएं सुनते हुए (2) अन्धकार पूर्ण रात्रि में एकान्त में मिलते हुए, यौवन में एक प्रदेश (स्थान) में रहते हुए (3) काम मार्ग में मन (और) वचन-काय दोनों से आहत हुए पुरुष के द्वारा सुख प्राप्त नहीं किया जाता है (4) (जो) शील-भंग करते हुए रति-रस में रमता है (वह) दुःख भोगते हुए भव-वन में भ्रमता है (5) ऐसा जानकर पर-स्त्री त्याग किया जावे (और) रति-हास्य में मिश्र वचन नहीं किया जावे (बोला जावे) (6) मैथुन रसाभिलाषा से शरीर को फसाना, रास्ते में सह गमन, एक सेज पर शयन, एक आसन पर बैठना, दिखाई दी हुई स्त्री को फिर पलटकर देखना, नेत्रों का मिलाना (नेत्रों में नेत्र डालना), शरीर-संघर्षण, हार्दिक दर्शन, चित्त समर्पण, मुह-रसदान में साथ, शरीर चपेटन इस प्रकार के (और) अन्य सभी भाव, मन, वचन, काय तीनों प्रकार से निःशेष छोड़ो (7–10)।

घत्ता—इस प्रकार व्रत भंग होने के अन्य अनेक प्रकार के कारण हैं। शील निवारणार्थ जिनके द्वारा (वे) नहीं छोड़े जाते हैं ब्रह्मचर्य के बिना उनके द्वारा (वे) इस भव और पर-भव में चुभाये जाते हैं ॥2.2॥

2.3

तिय चउ विह जरगवय विच्छेयण । माणुसि दिवि[1] तिरिक्खि अच्चेयण[2] ।1।
पर णारिहिं[3] किज्जइ परिवज्जणु[4] । तरुण[5] मरुण वयरगो[6] बंभु समुज्जणु[7] ।2।
थेरी जरगेरिहिं अणुहरमाणी । जुव्वणवइ[8] तह बहिणि ससाणी ।3।
लहु पर तिय पुत्तिय समु दीसइ[9] । जेण ण वम्महु चित्ति किलीसइ[10] ।4।
णिय घर दासि तहव अणुबंधिणि । सारुय णिय[11] सालिय[12] संबंधिणि ।5।
खेडु करंतह सरिसउ एयहं । बंभचेरु भज्जइ अविवेयहं ।6।
एतडियहि मयणग्गि पलित्तिहि । पवसि णियहि पाविय वि हवत्तइ[13] ।7।
धणु लुद्धइं वि सहिय दोहग्गिहि । गय सामियहि विहियउ[14] लग्गहि ।8।
रइ-रसु पिज्जइ जं गइ[15] माणउ । तं जिविद्धं विज्जइ अप्पाणउ ।9।

घत्ता— सव्वहं परणारिहि, सुगय णिवारिहि,
णिय पिय[16] मिल्लि विसेसह ।
परिहारु जि किज्जइ, णियमु लइज्जइ
तह णिकिट्ठ हवेसह ।2.3।

2.3 1. खग-देवि । 2. खग-तिरिक्खि अचेयणु । 3. क-णारिहि, ग-नारिहि । 4. क-परवंचणु । 5. ख ग-तणु । 6. क-वयणइं । 7. क-समुज्जलु । 8. ग-जुव्वणव्वया । 9. क-लहु पुत्तिय दीसइं । 10. ग-जेम्म न वम्मह चित्तु किलीसइ । 11. ग-निउ । 12. खग-साली । 13. खग-वत्तहे । 14. ग-विहियओ । 15. ग-जग । 16. क-पय ।

2.3

(पर स्त्री अवलोकन दृष्टि तथा स्त्री कर्त्तव्यात्मक चिन्तन)

मनुष्य, देव, तिर्यंच और अचेतन-चतुर्विध (पर) स्त्रियों का जन-समूह विच्छेदन (करे) (1) पर स्त्रियों द्वारा मन, वचन काय से निराकार निर्गुण परमात्मा के समान (पर पुरुष) परिवर्जन का उद्यम किया जावे (2) वृद्धा को माता के समान, यौवनवती स्त्री को बहिन के समान (और) (उम्र में) छोटी पर स्त्री पुत्री के समान देखें जिससे कि काम क्लेश नहीं देवे (3–4) अपने घर की दासी, उसी प्रकार साले की स्त्री (और) साली (आदि) के समान इन सम्बन्धियों में अविवेक पूर्वक क्रीडा करते हुए के ब्रह्मचर्य भग्न हो जाता है (5–6) इसमें प्रदीप्त कामाग्नि अपने में होकर प्रवास पाती है (7) दुर्भागी धन के लोभी (इस कामाग्नि से) सहित होते हैं । स्वामी के चले जाने पर किया हुआ (कृत्य-कर्म) ही साथ देता है (8) जो (जिसके द्वारा) रति–रस पिया जाता है (उसका) बिजली के समान क्षणभंगुर अपना जीवन लोकोत्तर में गया (मरा हुआ) मानो (9) ।

घत्ता—सुगति निवारक सभी स्त्रियों के द्वारा अपने प्रीतम से विशेष रूप से मिला जावे । नियम लिया जाकर त्याग किया जाना निकृष्ट होता है ।।2 3।।

2.4

वय भंगहो कारणि[1] जइ गिहत्थु । वज्जइ ता वय-पालण समत्थु ।1।
ग्रह चित्ति[2] एउ णउ[3] मुणइ कोइ । तिय रमणे किं किर दोसु होइ ।2।
हिंसा फुडु-जीवहं दुक्खकारि[4] । तह ग्रलियउ पर संतावकारि ।3।
धणहरण किरज्जण[5] जणिय दुक्खु । रइ रमणे पुणु जुग्र[6] लहिंहि सुक्खु ।4।
फुडु पाव[7] पढम ग्रवयत्तएण । ण[8] वि दोसइ दोसु ग्रबंभएण ।5।
इय जइ वि[9] को वि चिंतइ कुहेउ । लो तहो[10] मणि बुज्झइ जीव एउ[11] ।6।
जणि[12] बंभु भणिउ परमप्प सिद्धु । तहो चरणु बंभचेरु वि[13] पसत्थु ।7।
तह पढमाणु जणु लहइ सिद्धि[14] । रह रमणें पुणु संसार-विद्धि ।8।
संसारु णिरंतरु[15] दुक्खभारु । सिद्धत्तणु सासय सुक्ख सारु ।9।
बंभे कहिज्जइ भवहु[16] जोउ । मेहुणु संसारहो विद्धि बीउ ।10।

घत्ता— इंधणु वि धण[17] संतहं, सुरउरमंतहं,[18]
जं वड्ढिउ संसारसिहि ।
तं बंभजलोहिं[19], ख[20]वियमलोहिं,
वुज्झाविज्जइ दाहणिहि[21] ।2.4।

2.4 1. ख–कारने । 2. ख–चित्ते । 3. खग–जइ । 4. खग–सोक्खहारि । 5. क–किरणजण । 6. कग–जइ, जुध । 7. ग–पाउ । 8. ग–न । 9. ख–जयवि । 10. खग–तुहु । 11. ख–मणे बुज्झहि जीव एव । 12. ख–जणे । 13. ख ग–जि । 14. ग–इस पाण्डुलिपि में यह अर्द्धाली नहीं है । 15. ग–निरतरु । 16. ख ग–भवहो । 17. ख–धण, ग–धण । 18. ख–सुरवरमंतहं । 19. खग–जलोहें । 20. ख–खमि । 21. ग–दाहनिहि ।

2.4

(ब्रह्मचर्य और मैथुन के परिणाम)

व्रत पालन करने में समर्थ यदि गृहस्थ भंग होने के कारण व्रत त्यागता है (1) अथवा चित्त में कोई यह नहीं जानता है (कि) स्त्री रमण में निश्चय से क्या दोष होता है (2) हिंसा-विनाश को प्राप्त जीवों के (को) सुखकारी है (यह) झूठ है। यह संतापकारी है (3) धन का चुराया जाना निश्चय से लोगों को दुखोत्पादक है, रति-रमण में दोनों (स्त्री-पुरुष) सुख पाते हैं (4) नीचे अवतरित ब्रह्मचर्य विहीन (पुरुष) के द्वारा प्रथम पाप में स्पष्टतः दोष नहीं देखा जाता है (5) इस प्रकार यदि कोई भी कुहेतु का चिन्तन करता है तो उसके मन में जीव इस प्रकार जानता है (6) संसार में ब्रह्मचर्य सिद्ध परमात्मा के कहा गया है। उनका व्रतादि आचरण प्रशस्ति/प्रशंसनीय ब्रह्मचर्य है (7) उसे पढ़नेवाला मनुष्य सिद्धि पाता है (और) रति-रमण से उसके संसार वृद्धि होती है (8) संसार निरन्तर दुःख का (और) सिद्धित्वपना-शाश्वत् सार स्वरूप सुख का भार है (9) ब्रह्मचर्य में जीव संसार से निकाला जाता है और दूसरा मैथुन संसार की वृद्धि (करता) है (10)।

घत्ता—जलते हुए ईंधन को बादल शान्त करते हैं (किन्तु) मैथुन सेवन करते हुए के संसार रूपी अग्नि बढ़ती ही है। अतः उस ब्रह्मचर्य रूपी जलराशि के द्वारा मैलराशि का नाश करके (मैथुन) दाह-निधि बुझाई जावे ॥2.4॥

2.5

जगि[1] वंभचरणु संसार-छेउ । जीवहु मेहुणु भव-विद्धि-हेउ ।1।
एकल्ल वीरु एकल्ल[2] वंभु । अणुचरइ अकामु विमुक्क[3] डंभु ।2।
उप्पाडि[4] वि सो भववेल्लि कंदु । पर वंभु होइ सुह अमियचंदु ।3।
णर तियहि जुअलु[5] पुणु मिहुणु होइ । एकल्ल मिहुणु वुच्चइ ण[6] कोइ ।4।
तहो मिहुणहो[7] मयणपलित्तगत्तु । अण्णण्णु[8]रमणु[9] मेहुणु पउत्तु ।5।
रइरसु णरु पीवइ जेम जेम[10] । संसारु जलोयरु तेम तेम ।6।
वड्ढइ[11] पसरइ[12] वहु देह[13]-भारु । दूरी कय गुरु दुह[14] रोरु पारु[15] ।7।
मेहुणहो अत्थि वि खड्ड दोसु । जर जम्मण -मरण-दुहोह कोसु ।8।
जं वंभचरित्तहो[16] गुण विसालु[17] । तं सासयसुक्खु[18] अणंतुकालु ।9।
जइ सइ सुज्झइ[19] ण[20] अयाणबुद्धि । तो अत्थि ण[21] कि जिणवयणसुद्धि ।10।

घत्ता— जिण-वयणु ण[22] सुज्झइ, सइ ण[23] वि वुज्झइ,
मिच्छत्तहो अण्णाणहो[24] ।
संबंधि[25] गूढउ[26], जीव विमूढउ[27],
अत्थि ण चरण णिहाणहो[28] ।2. ।

2.5 1. ख ग–जगे । 2. खग–जो एक्क। 3. ग–अविकामुक्क । 4. ख–उप्पाउ वि, ग–उप्पाडे वि । 5. ख–जुयलि, ग जुयले । 6. ग–न । 7. खग–मिहुणहु । 8. ख–अण्णोण्णु, ग–अन्नान । 9. खग–रमणु, क–इस पाण्डुलिपि में वर्ण विपर्यय होने से लिखनेवाले ने रमण के स्थान पर मरण लिखा है । 10. क–जाम-जाम । 11. कख–वड्ढइ । 12. खग–पसरिय । 13. ग–देहु । 14. सुह । 15. क–रोहभारु, ग–रीहपारु । 16. ग–बंभचरित्तहु । 17. गुणु विसालु । 18. ख–सोक्खु, ग–सोक्खु । 19. ग–सुज्झइ । 20. ग–न । 21. ग–न । 22. ग–न । 23. ग–न । 24. ग–अणाणहो । 25. खग–संबंधे । 26. क–गुढउ । 27. क–विमुड्ढउ । 28. ग–निहाणहो ।

2.5

(मैथुन—स्वरूप, दोष तथा ब्रह्मचर्य महात्म्य)

जग में ब्रह्मचर्य का आचरण संसार-छेदक और मैथुन-जीवों की संसार वृद्धि का कारण है (1) जो दम्भरहित होकर निष्काम अकेले ब्रह्मचर्य का आचरण करता है (वह) अकेला वीर है (2) वह संसाररूपी बेल की जड़ें उखाड़ देता है। उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य से चन्द्र जनित अमृत के समान सुख होता है (3) फिर युगल नर-नारी के द्वारा (ही) मैथुन होता है। अकेले से (नर-नारी दोनों में किसी एक के द्वारा) मैथुन (क्रिया का) होना कोई नहीं कहता है (4) उन मैथुन करनेवाले अन्यान्य नर-नारी (जो पति-पत्नी नहीं है) के काम से प्रदीप्त होने पर (उनके परस्पर रमण को मैथुन कहा गया है (5) ज्यों ज्यों मनुष्य रति-रस को पीता है त्यों त्यों संसाररूपी जलोदर (रोग) बढ़ता है और बहु देह-भार फैलता है। (अतः) बहु दुःख दूर करके (हे) दरिद्र (पार हो) मैथुन त्याग कर दुःखों से मुक्त हो (6–7) इस मैथुन के अधिक दोष हैं। (वह) जन्म, जरा (और) मरण दुःख समूह का भण्डार है (8) जिस ब्रह्मचर्य के महान् गुण हैं वह अनन्तकालीन शाश्वत् सुखकारी है (9) यदि अज्ञानी को स्वयं नहीं सूझता है तो इसमें क्या जिनवचन शुद्धि नहीं है ? (अर्थात् इसमें जिनवचन की शुद्धि का दोष नहीं है (10)।

घत्ता—अज्ञानी मिथ्यात्वी के (को) जिनेन्द्र वचन नहीं सूझते। मोही जीव (विमूढ) अर्हन्त की आचरणनिधि की गूढता (गुप्त रहस्य) को स्वयं नहीं बूझता है/समझता है। 2.5।

2.6

अह यणु[1] बंभुसरूउ ण याणइं । सुह[2] वुद्धिए मेहुणु-रसु माणइं ।1।
तं णिमित्तु ववसाइ[3] पयट्टइं[4] । असि मसि किसि वाणिज्जिहि[5] वट्टइं ।2।
ई सरणीसु[6] णरिंदु[7] सुरिंदु वि । कामभोय सुहकय आणंदु वि ।3।
जासु जि कारणि[8] जणु जगि हिंडइ[9] । तं जि भोय-सुहु[10] को किर छंडइ ।4।
इयमणु भोयसुक्खु जणु ईहइ । बंभहो वुहु मुणवु[11] पुणु बोहइ ।5।
तिणि वउ बंभु[12] एउ[13] अइ दुद्धरू । को धरि सक्कइ जइ दिढ कंधरू ।6।
बोल्लंतह सव्वहमि सुहिल्लउ । रक्खंतह[14] मरणहो वि दुहिल्लउ ।7।
मणु अण्णाणु वद्धरू[15] मयणुक्कडु । तणु पुणु होए बंभरइ[16] लंपडु ।8।
तिय-जणु मणु मंडइं पुणु मोहइं । सिंगारिहि वयणिहि[17] जणु खोहइ ।9।
जहि एहउ संगमु किर सव्विहि[18] । तहि किम वउ पालिज्जइ भव्विहि[19] ।10।
इय मणि[20] चिंतिवि[21] बंभु णिहिज्जइ । जिम किम करितो णिव्वाहिज्जइ ।11।

घत्ता— वउ बंभु सलक्खणु, जाइ णर खणु
जइ दुद्धरू तउ किज्जइं ।
विणु बंभ चरित्तें, जेण पवित्तें,
तुव संसारू ण छिज्जइं ।।2.6।।

2.6 1. ख–जण, ग–जणु । 2. क–सह । 3. खग–ववसाए । 4. ख–पयंटइ ग–पयट्टइ । 5. खग–वाणिज्जिहे । 6. क–ईसुर ।7. ग–नरिंदु । 8. ख–कारणें, ग–कारेण । 9. खग–हिंडइ । 10. क–सुह । 11. ख–मयंतु । 12. बंभ 13. ख ग–एहु । 14. क–रक्खंतहो ।15. ग–बधरु । 16. ख ग– यंत । 17. ख–सिंगारेहि वयणेहि, ग–सिंगारहि वयणिहि । 18. खग–सव्वेहि । 19. खग–भव्वेहि । 20. ख–मणे । 21. खग–चिंतेवि ।

2.6

(ब्रह्मचर्य—दुर्द्धरता)

अथवा लोग ब्रह्म (मैथुन) का स्वरूप नहीं जानते हैं, सुख-बुद्धि से मैथुन-रस को सम्मान देते हैं (10) उसके निमित्त (वे) व्यवसाय में प्रवृत्ति करते हैं (और) असि, मसि, कृषि (तथा) व्यापार में रहते हैं (2) काम-भोग के सुख के लिए आनन्दपूर्वक नरेन्द्र और सुरेन्द्र भी इसकी शरण में आते हैं (3) जिस कारण से लोग संसार में भ्रमते हैं, उस भोग-सुख को निश्चय से कौन छोड़ते हैं (4) इस प्रकार लोग भोग-सुख देखते हैं। ब्रह्म (मैथुन) के दुःख जानते हुए भी डरते हैं (त्याग नहीं पाते, सोचते हैं) यह ब्रह्मचर्यव्रत अति दुर्धर है, कौन धारण कर सकते हैं ? जिनके स्कन्ध मजबूत हैं अर्थात् जो दृढ़ निश्चयी हैं (6) बोलते हुए हम सभी को सुखकर है (किन्तु) धारण करते हुए मरण से भी अधिक दुःखकर है (7) हे मानव ! अन्यान्य की अपेक्षा काम अधिक कड़वा है। अंग विहीन होकर भी लम्पटी मैथुन सेवन करता है (8) स्त्रीजन मनुष्य को मना लेती हैं, पश्चात मोह लेती हैं, अलंकृत वचनों द्वारा अथवा शृंगार और वचनों से मनुष्य को विचलित कर देती है (9) जहां सभी के द्वारा निश्चय से संयम (किया जाना है) वहां भव्य जनों द्वारा व्रत कैसे पाला जावे ? (10) इस प्रकार मन में सोच विचार करके ब्रह्मचर्य स्थापित किया जावे और जिस किसी प्रकार निर्वाह किया जावे (11)।

घत्ता—ब्रह्मचर्यव्रत लक्षण सहित है, मनुष्य के क्षण में उत्पन्न होता है। यद्यपि दुर्धर है तो (भी) करने योग्य (धारणीय) है। ब्रह्मचर्याचरण में प्रवृत्ति किए बिना तुम्हारा संसार नहीं छीजता है/नाश होता है।2.6।

27

किम किर रक्खिज्जइ वय-रयणु	। तियजणि विचरंतहिं रयणि-दिणु[1]	।1।
तणु विवइ मण-लोणउं मयणु[2]	। पोत्थयहिं कहिमि पुणु जिण-वयणु	।2।
ग्रह सिरिजइ णासइ वि गारिडिउ[3]	। तहि कासु ण[4] मेहुणु-विसु चडिउ	।3।
सउवार कहिज्जइं पुणु वि पुणु	। तउ[5] वयणु जि केवलु पर वयणु	।4।
मेहुणि[6] कुइ पाडइ मयणु परा	। वंभहो संगमु किम[7] होइ परा	।5।
जइ एउ जीउ तो कहमि सुणि	। जिम बंभलाहु तुह[8] होइ पुणि	।6।
णोसेसु वि छंडि ण सक्कियइं	। जइ मेहुणु ता एरिसु कियइ[9]	।7।
तं सणइ-सणइ पुणु छंडियइ[10]	। जिम वयरयणिहि तणु[11] मंडियइ[12]	।8।
पढमउ सव्वहं पर-कामिणिहि	। किज्जइ णिविति[13] दिणि-जामणिहि	।9।
णिय घरण संतोसि ग्रत्थियइ[14]	। पर-तिय-संगमु ण समिच्छियइ[15]	।10।

घता— पर तिय-रइ संगहो[16], कय वय-भंगहो[17],
वज्जणु जइ किर णिव्वहइ[18] ।
तउ[19] ग्रासि ग्रणुव्वउ[20], तुरियाणुव्वउ
दुव्वहु पुणु पुणु को चवइ ।2.7।

2.7 1. ग-इस यमक का उत्तर अंश 'क' पाण्डुलिपि में नहीं है। 2. इस यमक का यह पूर्व खण्ड 'क' पाण्डुलिपि में नहीं है। 3. ख-णारूडिउं, ग-णरडिउ। 4. ग-न। 5. खग-तो। 6. खग-मेहुणु। 7. खग-किर। 8. खग-तुव। 9. इस यमक का उत्तर पक्ष 'क' पाण्डुलिपि में नहीं है। 10. यह अंश भी 'क' पाण्डुलिपि में नहीं है। 11. क-तुणु। 12 क-मंडियए। 13. ग-निविति। 14. क-अच्छियइ। 15. क-समच्छियइ। 16. क-संगहु, ग-संगहे। 17. क-भंगहु। 18. क-णिव्वहइं। 19. खग-तो। 20. ग-अउव्वउ।

2.7

(ब्रह्मचर्याणुव्रत साधनात्मक कवि परामर्श)

व्रत रत्न को निश्चय से कैसे रक्षा की जावे (क्योंकि) स्त्रीजन दिन रात विचरती है (1) काम में मन के तल्लीन होने पर शरीर (उससे) आविद्ध हो जाता है। फिर आगम में जिनेन्द्र-वचन कहे गये हैं (2) अथवा (जो) कामोत्पादक को मारता है उस गारुडिक पर मैथुनरुपी विष नहीं चढ़ता है (3) केवली के परम वचन पुनः पुनः सौ बार कहे जावें तो (भी) मदनोन्मुख को मैथुन गिरा देता है। उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य का संगम किस प्रकार होवे (4-5) हे जीव ! यदि इस प्रकार है तो जैसे तुझे ब्रह्मचर्य की प्राप्ति होवे फिर वह कहता हूँ—सुनो ! (6) यदि सम्पूर्ण मैथुन का त्याग नहीं कर सकते हो तो ऐसा करो (7) उसे धीरे-धीरे त्यागो (और) व्रत-रत्नों के द्वारा देह विभूषित करो (8) सर्वप्रथम दिन और रात्रि में सभी परस्त्रियों से निवृत्ति की जावे (9) अस्थिर अपने धन में संतोष करो। परस्त्री संगम की इच्छा नहीं करो (10)।

घत्ता—परस्त्री रति संगम का, व्रत-भंग का त्याग कर (दृढ़तापूर्वक निश्चय से) यदि निर्वाह किया जाता है तो दुबारा बार-बार कौन कहे, चौथा अणुव्रत आशीष देता है।2.7।

2.8

जइ थूलु वि वउ णिव्वहइ[1] णउ[2] । तउ[3] बंभहो उप्परि गाढु पउ[4] ।1।
ण वि मुच्चइ किज्जइं उद्धरणु । विणु बंभहो कोइ ण जगि[5] सरणु ।2।
जइ दीसइ कत्थ वि का वि तिय । तउ[6] मणि[7] ण[8] धरिज्जइ मुणिवि[9a] पिया ।3।
ण विगोवणु[9b] किज्जइं तहो[10] तणउ । ण वि दाणु ण दूई पेसणउ ।4।
[illegible] वार वार [illegible] [illegible] । ण[11] वि किज्जइ अप्पहो संतवणउ[12] ।5।
रइरंगे अप्पुणु वासियइ । णिय[13] बंभ-रयणु ण वि णासियइ[14] ।6।
एक्कंति मिलइं जइ तिय-रयणु । तउ णवि सकामु[15] वुच्चइं वयणु ।7।
अह सव्वु छंडि हसियउ सरसु[16] । तउ[17] जुत्तु ण[18] केयइ[19] तणु-परिसु[20] ।8।
कंदप्पु हियइ ण[21] पसारियइं । महिमा गुरुअत्तु[22] ण हारियइं ।9।
इय लोय भउ वि परलोय-भउ । चिंतिवि[23] रक्खिज्जइ बंभ वउ ।10।

घत्ता— संकेयहो मंडणि, तणु-अवरंडणि[24],
जासु ण[25] मणुअो[26] हट्टइ[27] ।
तहो कय गुण-भंगहो[28], ययण वसंगहो[29],
वय लेसु वि ण पयट्टइ ।।2.8।।

2.8 1. ग-णिव्वहइ । 2. ग-नहु । 3. कग-तो । 4. ख-पहु, ग-पइ । 5. ग-जगे । 6. ख ग तो । 7. ख-मणे 8. ग-न । 9. (a) ख-मुणेवि, ग-करिवि । 9. (b) कखग-गोहणु । 10. ख-तहे । 11. ग-न । 12. खग-संतवणु । 13. ग-निय । 14. ग-न विन्नासियइ । 15. ख-कसामु । 16. खग-सरणु । 17. खग-तो । 18 ग-न, 19. खग-केमइ । 20. ग-फरिसु । 21. ग-न । 22. खग-गरुवनु । 23. ख-चिंतेवि । 24. ख-अवरंडणे, ग-अवलुंडणें । 25. ग-न । 26. ख-मणाक । 27. ग-हट्टए । 28. ग-भंगहे । 29. ग-वसंगहे ।

2.8

जइ थूलु वि वउ णिव्वहइ[1] णउ[2] । तउ[3] बंभहो उप्परि गाढु पउ[4] ।1।
ण वि मुच्चइ किज्जइं उद्धरणु । विणु बंभहो कोइ ण जगि[5] सरणु ।2।
जइ दोसइ कत्थ वि का वि तिया । तउ[6] मणि[7] ण[8] धरिज्जइ मुणिवि[9a] पिया ।3।
ण विगोवणु[9b] किज्जइं तहो[10] तणउ । ण वि दाणु ण दूई पेसणउ ।4।
तहिं वार वार मणि चिंतवणु । ण[11] वि किज्जइं अप्पहो संतवणउ[12] ।5।
रइरंगे अप्पुणु वासियइ । णिय[13] बंभ-रयणु ण वि णासियइ[14] ।6।
एक्कंति मिलइं जइ तिय-रयणु । तउ णवि सकामु[15] वुच्चइ वयणु ।7।
अह सव्वु छंडि हसियउ सरसु[16] । तउ[17] जुत्तु ण[18] केयइ[19] तणु-परिसु[20] ।8।
कंदप्पु हियइ ण[21] पसारियइं । महिमा गुरुअत्तु[22] ण हारियइं ।9।
इय लोय भउ वि परलोय-भउ । चितिवि[23] रक्खिज्जइ बंभ वउ ।10।

घत्ता— संकेयहो मंडणि, तणु-अवरुंडणि[24],
जासु ण[25] मणुआ[26] हट्टइ[27] ।
तहो कय गुण-भंगहो[28], वयण वसंगहो[29],
वय लेसु वि ण पयट्टइ ॥2.8॥

2.8 1. ग-निव्वहइ । 2. ग-नहु । 3. खग-तो । 4. ख-पहु, ग-पइ । 5. ग-जगे । 6. ख ग तो । 7. ख-मणे 8. ग-न । 9. (a) ख-मुणेवि, ग-करिवि । 9. (b) कखग-गोहणु । 10. ख-तहे । 11. ग-न । 12. खग-संतवणु । 13. ग-निय । 14. ग-न विन्नासियइ । 15. ख-कसामु । 16. खग-सरणु । 17. खग-तो । 18 ग-न। 19. खग-केमइ । 20. ग-फरिसु । 21. ग-न । 22. खग-गरुवत्तु । 23. ख-चितेवि । 24. ख-अवरुंडणे, ग-अवतुंडणें । 25. ग-न । 26. ख-मणक । 27. ग-हट्टए । 28. ग-भंगहे । 29. ग-वसंगहे ।

(व्रतस्थिति के लिए अनौचित नारी दर्श-पर्शवर्जनात्मक उपदेश)

यदि स्थूल व्रत का भी निर्वाह नहीं होता है तो ब्रह्मचर्य के ऊपर दृढ़ रहो (1) छोड़ो नहीं, उदाहरण बनें। बिना ब्रह्मचर्य के संसार में कोई शरण नहीं है (2) यदि कहीं कोई भी स्त्री दिखाई देती है तो प्रिय जानकर भी मन में धारण नहीं की जावे (3) उसकी देह प्रकाशित नहीं की जावे और न प्रेषित दूती को दान दी जावे (4) अपने को शान्त रखते हुए उसका बार बार मन में चिन्तवन नहीं किया जावे (5) रति रंग में अपने में रहो किन्तु अपना ब्रह्मचर्य रत्न मत नाशो (6) यदि स्त्री रत्न एकान्त में मिलता है तो भी सकाम वचन मत बोलो (7) अथवा सरस होकर सभी प्रकार की हँसी छोड़ो। किसी की देह का स्पर्श उचित नहीं है (8) हृदय में काम मत फैलाओ। बड़प्पन का महात्म्य नाश नहीं करो (9) इस लोक और परलोक का भय विचार कर ब्रह्मचर्यव्रत की रक्षा की जावे (10)।

घत्ता—संकेतों की सुसज्जा और शारीरिक आलिंगन में (से) जिसका मन नहीं हटता है, काम के वश में हुए अंगवाले (और) अर्जित गुण भंगवाले उसके लेशमात्र भी व्रत में प्रवृत्ति नहीं होती है।2.8।

2.9

अज्ज वि तणु फंसालिंगणेहि । संकेयहरम्मि वरंगणेहि[1] ।1।
जुत्तु वि जइ मेहुणु परिहरइ[2] । तू हट्टिवि[3] अप्पउ उद्धरइ[4] ।2।
तउ[5] वुड्डवि कहिमि थाह लहइ । गयडालु[6] वि मूलि[7] उल्लहइ ।3।
जउ सत्त वि[8] वज्जउ[9] दीणमणु[10] । अणुदिणु कामग्गि पलित्तमणु ।4।
परदार[11] सुरय[12] संगमु सरइं । किं किं ण[13] मयण-वसगउ करइ[14] ।5।
संसार-दुहोह-समुद्दि[15] तहो । वुड्डतहो लग्गणु किं पि ण हो[16] ।6।
अहवा भग्गु वि वय-रयणु-गइं[17] । दिढु णियमु करिवि पुणु संगहइ[18] ।7।
णिव्वाहइ जामज्जीउ सगुणु । संसारि ण वुड्डइ[19] सोज्जि[20] पुणु ।8।
जो पुणु दूसह मयणग्गि वसु[21] । परिहरइ कया वि ण सुरय[22]-रसु[23] ।9।
रसमइ[24] सया वि पुणु पुणु रमइ । सो चिरु दुहसायरे[25] परिममइ[26] ।10।

घत्ता— जिणि[27] जुव्वणु[28] गालिउ, सीलु ण[29] पालिउ,
जो वय गहणि[30] अयाणउ ।
चउगइ भव-सायरि, दुक्ख जलायरि,
तिणि[31]बोलिउ अप्पाणउ[32] ।।2.9।।

2.9 1. ग-वरंगणेहि । 2. ग-परिहरेइ । 3. ग-तुं हरवि । 4. ग-उद्धरेइ । 5. खग-तो । 6. ग-गयेडालु । 7. ग-मूले । 8. खग-जो । 9. ख-वज्जिउ । 10. ख-दीणमाणु, ग-दीणमणु । 11. ख-परदारु । 12. ख-सुरइ । 13. ग-न । 14. क-करए । 15. ख-समुद्दि । 16. क-तहु, ग-नहु । 17. ग-जई । 18. ग-पाण्डुलिपि में इस यमक का उत्तरपक्ष स्पष्ट नहीं है । 19. ण वुडइ अंश ग-पाण्डुलिपि में स्पष्ट नहीं है । 20. कग-सोजि । 21. ग-पुणु । 22. ग-न सुरइ । 23. क-रसो । 24. ख-रसमय । 25. ग-दुहसायरि । 26. ग-भमइ । 27. ग-जिनि । 28. खग-जोव्वणु । 29. ग-न । 30. खग-गहणे । 31. ग तिणि । 32. ग-अप्पणउं ।

2.9

(ब्रह्मचर्याणुव्रत—ग्रहणात्मक कवि उपदेश)

स्त्रियों (वरांगनाओं) के द्वारा आज भी संसेतपूर्वक महल में देह फंसाकर आलिंगन किया जाता है (1) यदि तू मैथुन त्यागता है (और उससे) हटकर अपना उद्धार करता है (तो) युक्तिसंगत है (2) मैं (कवि) कहता हूँ—डुबकी लगाकर थाह प्राप्त करो। डाल छूट जाने पर मूल ग्रहण करो (3) प्रतिदिन कामाग्नि से प्रदीप्त मनवाले दीन मन से सार तत्त्व (ब्रह्मचर्य) को छोड़कर परस्त्री-सुरति-संगम की शरण लेते हैं। (ठीक है) काम के वश में गया क्या-क्या नहीं करता है (4–5) अरे संसार-दुःखसमूह रूपी समुद्र में डूबते हुए का संग कोई नहीं करता है (6) (अतः) व्रत-रत्न भग्न होकर चले जाने पर पुनः दृढ़ नियम करके ग्रहण करो (प्राप्त करो) (7) जब तक जीव है उस ब्रह्मचर्यव्रत का निर्वाह किया जावे, पुनः संसार में मत डूबो (8) जो मदनाग्नि-वश दोष लगता है (और) सुरति-रस का कभी भी त्याग नहीं करता है (9)। सदा रसमय रहता है और पुनः पुनः रमण करता है, वह चिरकाल तक दुःखरूपी सागर में भ्रमता है (10)।

घत्ता—जो व्रत ग्रहण में अज्ञानी है, जिसने यौवन गला दिया (नाश कर दिया) और शील का पालन नहीं किया। दुःखरूपी जल की खदान चतुर्गतिरूपी भव-सागर में वह अपने को डुबा देता है।2.9।

2.10

आजम्मि[1] जो वि णासिय गुणहो । ण विमूढु विरच्चइ मेहुणहो ।1।
सो सयल काल किम[2] रइ-रयणु । भव दुक्खइ[3] सहइ चोजु कवणु ।2।
जो फाइड पोयणु[3] अप्पणउ । सो जलि वुड्डइ को जंपाणउ[4] ।3।
जुव्वण भरि किं वि ण चरिउ वउ । विणु सीलें[5] जम्मु वि जासु गयउ[6] ।4।
सो वुड्ढत्तण एरिसु[7] करइ । जीवंतहं पुणु उवाउ फुरइ[8] ।5।
णिंदिवि गरहिवि अप्पउ घणउ[9] । पुणु णियमु लेइ मेहुण-तणउ ।6।
तिविहिं णिव्वाहइ बंभवउ । तं ण वि पणट्ठु जं वलिय लउ[10] ।7।
सो बंभेचरु पुणु गुणु महए[11] । छिंदिणवि संसारु मोक्खु लहए[12] ।8।
अहवा जुव्वणि उज्झिय सरणु । जइ कासु वि होइ तुरिउ मरणु ।9।
सो मरणकालि जिण-वयण रउ । मेहुणु-णियमिवि उद्धरउ-वउ ।10।
झाए विणु पंच वि परम गुरु । वय फलि ण[13] सुरालइ होइ सुरु ।11।

घत्ता— जेण जि वुड्ढत्ते, अहव मरंते,
बंभचेरु वउ लद्धउ ।
तहो कज्जु णिभंतउ, वहु सुहु वंतउ,
जइ पच्छेइ तो सिद्धउ[14] ।2.10।

2.10 1. खग-आजम्मु । 2. ग-किं न । 3. खगे-दुक्खहं । 4. ख-पंजणउ । 5. क-सील । 6 खग-गउ । 7. ग- परिसु । 8. यह यमक 'क' पाण्डुलिपि में नहीं है । 9. यह अंश भी 'क' पाण्डुलिपि में नहीं है । 10. ग-लऊ । 11. खग-महइ । 12. खग-लहइ । 13. क-फले ण । 14. ग-सिद्धउ ।

2.10
(ब्रह्मचर्य माहात्म्य)

जो आजन्म गुणों का नाश करता है (उस) मैथुन का मोही (उससे) विरक्त नहीं होता है (1) वह सदैव रति-रत्न के लिए कैसे भव-दुःख सहता है (इसमें) कौन आश्चर्य है ? (1) जो अपनी नौका फाड़ देता है, वह पानी में डूबता है. (उसे) कौन पालकी में बैठाता है (3) यौवन भर कुछ भी व्रताचरण नहीं किया, जिसका जन्म बिना शील से गया (4) वह जीते हुए वृद्धत्व में ऐसा स्पष्ट उपाय करे (5) अपनी बहुत निन्दा गर्हा करके शारीरिक मैथुन का नियम लेवे (6) तीनों प्रकार से (मन, वचन, काय) ब्रह्मचर्य व्रत निर्वाहे। उसे नष्ट न करे कि पुनः लेवे (7) इस ब्रह्मचर्य का महान गुण है। (इससे) संसार काटकर मोक्ष प्राप्त किया जाता है (8) अथवा यौवन की शरण त्यागकर (अर्थात्) यौवनावस्था के पश्चात्) जिस किसी का शीघ्र मरण होता है (9) वह मरण-काल में जिनेन्द्र के वचनों में रत रहे और मैथुन का नियम लेकर व्रत का उद्धार करे (10) बिना पंच परमेष्ठियों का ध्यान किए व्रत का फल स्वर्ग में देव के भी नहीं होता है (11)।

घत्ता—वृद्ध होते हुए अथवा मरते हुए जिसके द्वारा ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण किया जाता है। निर्भ्रान्तवृत्ति से उसके बहुत सुख होते हुए यदि (पहले व्रत धारण न किये जाने का) पश्चाताप करता है तो सिद्ध होता है।2.10।

2.11

जसु पुणु अजम्मु[1] वि णिव्वहइं[2] । वउ-बंभु-तासु को गुणु कहइ[3] ।11।
जो बंभ-विवज्जिउ पुणु मरइ[5] । तह[4] मुवहु[6] ण[7] कोउ वाउ करइ[8] ।21।
भउ[9] मरण णिपीडिउ पडि खलइ[10] । सो चउ गइं दुक्खग्गिए जलइ[11] ।31।
जहि कालि गहिमि पुणु बंभ गुणु । पावइ मुच्चइ तहि कालि पुणु ।41।
वउ बंभुण[12] जोउ ण[13] संगहइ । ण वि दुक्खहो छेउ ताम लहइ ।51।
जाणिवि[14] एवहिं[15] दिढ बंभ वउ । भव्वहि[16] पालिव्वउ[17] अचल पउ ।61।
जिम जिम मुच्चइ तिय-चितवणु । तिम-तिम ओहट्टइ रइरमणु ।71।
जिम-जिम तियहांसु विवज्जियइं[18] । तिम-तिम रइवरघणु खंडियइं[19] ।81।
जिम-जिम मण बंभहो णासियइं[20] । तिम-तिम मयरद्ध विणासियइं[21] ।91।
जिम-जिम परमप्पउ वंदियइं[22] । तिम-तिम वम्महो[23] णिक्कंदियइं[24] ।101।

घत्ता— इय विहिय[25] विहाणहिं[26], सुगइ पहाणिहिं[27],
वंभचेरु-वउ णिम्मलउ[28] ।
पालिज्जइ भावें, सुद्ध सहावें,
भव्वहि[29] णासिय[30] कलिमलु ।2.11।

2.11 1. क-अज्जमु । 2. ग-णिव्वहइ । 3. क-कहए, ख-महइ । 4. ख-महइ । 5. खग-तहो । 6. खग-मुवहो । 7. ग-ग । 8. खग-फुरइ । 9. ग-भव । 10. क-खलए । 11. कग-जलए । 12. ग-चु । 13. ग-ग । 14. खग-जाणेवि । 15. खग-एउ । 16. क-भव्वहि, खग-भव्वेहिं । 17. ख-पालेव्वउ । 18. खग-विवज्जियए । 19. खग-खंडियए । 20. ख-णायसिए, ग-वासियइ । 21. ख-विणासियए, विनासियए । 22. खग-वंदियए । 23. खग-वम्महु । 24. खग-णिक्कंदियए । 25. खग-विविह 26. ख-विहाणिहि, ग-विहूणेहि । 27. ख-पहाणेहि, ग-पहाणहि । 28. ग-निम्मलु । 29. ख-भव्वेहि । 30. ग-नासिय ।

2.11

(ब्रह्मचर्य – माहात्म्य)

फिर जिस ब्रह्मचर्य का आजन्म निर्वाह किया जाता है, उस ब्रह्मचर्य-व्रत के गुण कौन कहता है (कह सकता है) (1) जो ब्रह्मचर्य-रहित मरता है उसके मरने की कोई बात नहीं करता है (2) प्रत्येक भव-मरण को पीडा (दुःख) खलती है। वह (जीव) चारों गतियों की दुःखरूपी अग्नि से जलता है (3) (मैं) जिस समय में ब्रह्मचर्य के गुण ग्रहण करता हूँ उसी समय अशुभ कर्म छूट जाते हैं (4) (यदि) जीव ब्रह्मचर्य व्रत भली प्रकार ग्रहण नहीं करता है (तो) वह दुःखों का छेदन प्राप्त नहीं करता है (5) इस प्रकार जानकर भव्यजनों द्वारा अचल पद ब्रह्मचर्यव्रत दृढता-पूर्वक पाला जावे (6) ज्यों-ज्यों स्त्री-चिंतन छूटता है, त्यों-त्यों रति-रमण कम होता है (7) ज्यों-ज्यों स्त्री परिहास त्यागा जाता है त्यों-त्यों कामदेव के धनुष खण्डित होते हैं (8) ज्यों-ज्यों मनुष्य ब्रह्मचर्य को नाशते हैं, त्यों-त्यों कामदेव (उन्हें) नाशते हैं (9) ज्यों-ज्यों परमात्मा को वन्दते हैं, त्यों-त्यों कामदेव का निष्कासन किया जाता है (10)।

घत्ता –इस प्रकार विधि-विधान से सुगति (पानेवालों में) प्रधान भव्यजनों द्वारा शुद्ध स्वभाव से भावपूर्वक पाप-विनाशक, निर्मल ब्रह्मचर्यव्रत पालन किया जावे।2.11।

2.12

जसु चित्तु ण कंपइ णाइ मेरु । सो धरइ[1] विसुद्धउ बंभचेरु ।1।
छुडु वुज्झिउ बंभ सरूउ[2] चित्ति । ता होइ कमेण[3] मेहुण-णिवित्ति[4] ।2।
ण[5] वि लक्खिउ बंभ-सरूव जाम । मेहुणहो[6] णिवित्ति ण[7] होइ ताम[8] ।3।
इय सुपवित्ति[9] पुरिसेहि[10] जेम[11] । पालिज्जइ वउ णारिहिमि[12] तेम[13] ।4।
जा बंभ सरूउ[14] मुणेवि का वि[15] । तिय बंभचेरु पालइ[16] सया वि ।5।
कंखइ[17] ण[18] चित्ति[19] सिंगार सारु । तिय-लिंग सुक्खु[20] सोहग्ग सारु[21] ।6।
वउ पालइ केवलणाण[22] हेउ । तिय मरिवि[23] होइ सा सग्गि[24] देउ ।7।
छिंदिवि[25] तियलिंगु विणिंदणीउ । पावइ पुरिसत्तणु तियहि जीउ ।8।
पुणु लहिवि णरत्तणु[26] रमिय सुक्खु । तउ[27] चरिवि[28] लहइ णिवाण-सोखु[29] ।9।
इम मणि वुज्झवि सिव-सुह-जणेरु । णर-णारिहि[30] किज्जइ बंभचेरु ।10।

घत्ता— वउ एउ चउत्थउ, दिहु णियमत्थउ,
जो णरु-तिय-पालेसइं ।
सो दुक्ख-विहंजणु, भव-भव-भंजणु,
सासय-सुक्खु लहेसइं ।2.12।

2.12 1. ख-धरए । 2. ख-सरुव । 3. ग-कमिण । 4. खग-मिवित्ति । 5. ग-न । 6. ग-मेहुणहु । 7. ग-निवित्ति न । 8. यह यमक 'ख' पाण्डुलिपि में नहीं है । 9. ग-सुपवित्ते । 10. ग-पुरिसेह । 11. क-जाम । 12. ग-नारिहिमि । 13. इस यमक का पूर्वपक्ष 'ख' पाण्डुलिपि में नहीं है । 14. ख-सरुव, ग-सउरु (वर्ण विपर्यय) । 15. कख-को वि । 16. ख-पालय । 17. ग-कंखइ । 18. ग-न । 19. ख-चित्ते । 20. खग-सोक्खु । 21 ख-सारु । 22. ग-कैवलनाण । 23. ख-मारेवि । 24. ग-ससग्गि । 25. ख-छिदेवि । 26. ख-लहेविणुरत्तणु, ग-नरत्तणु । 27. ग-तेउ । 28. ख-चरेवि । 29. क-मोखु, ग-सुक्खु । 30. ग-नर-नारिहि ।

2.12

(ब्रह्मचर्य साधनात्मक लाभ)

जिसका चित्त कम्पित नहीं होता, मेरु पर्वत के समान (अचल) रहता है, वही विशुद्ध ब्रह्मचर्य धारण करता है (1) चित्त में शीघ्र ब्रह्मचर्य का स्वरूप जानो। इससे क्रमशः मैथुन-निवृत्ति होती है। (2) जब तक ब्रह्मचर्य का स्वरूप नहीं जाना जाता है, तब तक मैथुन-निवृत्ति नहीं होती है (3) इस प्रकार जैसे पुरुषों के द्वारा व्रत पाला जाता है, वैसे ही नारियों द्वारा पाला जावे (4) जो कोई स्त्री ब्रह्मचर्य के स्वरूप को जानती है, वह सदा ब्रह्मचर्य पालती है (5) (वह) चित्त में शृंगार नहीं चाहती। स्त्रीलिंग के सुख का सार सौभाग्य (सुहाग) है (6) (जो) स्त्री केवलज्ञान के हेतु ब्रह्मचर्य व्रत को पालती है वह मरकर स्वर्ग में देव (होती है) उस स्त्री का जीव निंदनीय स्त्रीलिंग छेदकर पुरुष-तन पाता है (8) नर-तन पाकर सुखों में रमने के पश्चात् तप करके निर्वाण सुख पाता है (9) इस प्रकार मन में शिव-सुख का उत्पादक समझकर नर और नारियों द्वारा ब्रह्मचर्य (धारण) किया जावे (10)।

घत्ता—जो नर-नारी इस चौथे व्रत के नियम को दृढ़तापूर्वक पालते हैं, वे दुःख और भव-भय भंजन करनेवाले शाश्वत् सुख पाते हैं।2.12।

2.13

वउ बंभचेरु जा तिय चरइ[1] । सा पर णर[2] संग–णियमु[3] करइ[4] ।11।
ण[5] वि पुज्जइ गंग ण[6] गवरि पुणु । पुज्जइ[7] ण[8] ढोरि ण[9] वि दुब्बतिणु ।12।
वडसाइति गाइति परिहरइ । ण[10] वि दुब्वट्ठमि कोरउ चरइ[11] ।13।
करवाचउत्थि दुग्गइ गमणे । जव–भोयणु बहुलं[12] चउत्थि दिणे[13] ।14।
संघाडइ[14] सत्त-पयासयहं । करि[15] तिण्णि[16] ति रात उवासयहं[17] ।15।
णिसि[18] गवरि–तिज्ज विहि जागरुणु । अणगोक्क[19] णागपंचमि[20] करणु ।16।
वासिउ–भोयणु सियलट्ठमिहि । पुज्जइ णग्ग होई अट्ठमिहि ।17।
चंदक्कालिहि[21] पूयागसणु[22] । कय उललत्तु अप्पय हसणु[23] ।18।
छज्ज दुवारसि[24] छज्जंचणउ । कुलदेविहि वाई ईच्छणउ[25] ।19।
कय लख गउरि[26] बहुतं दुलिहि[27] । सोहग्ग रयणि हय[28] मंद लिहि ।110।
माणिक्क–कुक्खि कु विहाणइहि । गौरि–णियइ भोयण–दाणइहि ।111।
एयइ तिय लिंग पयासणए । कय बंभचेरु-वय णासणए[29] ।112।

घत्ता—इय सव्वइं छंडइं, सइ ण[30] वि खंडइ
अवरतियहं ण करावइं ।
तियलिंगविणासणु, सासुह सासणु
बंभचेरु वउ पालइ ।2.13।

2.13 1. क-चरए । 2. ग–नर । 3. ग–नियमु । 4. क-करए । 5. ग–न । 6. ग–न । 7. क-पुज्जइ । 8. ग–न । 9. ग–न । 10. ग–न । 11. क–चरए । 12. क–बहुल । 13. खग–चउत्थि दिणि । 14. ख–संघाडय । 15. खग–कय । 16. ग–तिन्नि । 17. क-तिरातय वासयहं । ग-तिसत उवासयहं । 18. ग–निसि । 19. ग–अण गेके । 20. ग–नागपंचमि । 21 ख–चदुक्कालिहि, ग–चंदुक्कालिहि । 22. ख–पूआग । 23. ख–अप्पइ । 24. क–दुवासि । 25. ख–इंच्छणउ । 26. खग–गवरि । 27. ख–दंतुलेहि । 28. ख–हल । 29. ग–नासणइं । 30. ख–सयण ।

2.13

(स्त्रीलिंग—साधक एवं विनाशक हेतु)

जो स्त्री ब्रह्मचर्य का पालन करती है, वह पर-पुरुष-संग का नियम (त्याग) करती है (1) वह न गंगा को पूजती है और न गौरी को। न (गाय-बैल आदि) पशुओं को पूजती है, न हरी घास दूब को (2) वह वर्षांत के गीत गाना त्याग देती है। दूब और अंकुरित स्थल पर न ठहरती और न ही चलती (3) दुर्गति-गमन में (सहायक) करवाचौथ के दिन जवा का भोज करना (4) बल (शक्ति) प्रकाशनार्थ तीन दिन और रात का उपवास करना (5) गौरी तीज की रात विधिपूर्वक जागरण करना, नागपंचमी मनाना (6) शीतला अष्टमी में बासा भोजन करना, नत होकर अष्टमी को पूजना (7) चन्द्र-सूर्य-ग्रहण की पूजा करना, ग्रहण दूर होने पर हर्षित होना (8) शोभापूर्वक द्वादशी को पूजा करना, कुल देवी देवताओं के द्वारा बोलनेवालों से इच्छा करना (9) दुर्लभ लक्ष या अधिक गौरी प्रतिमाएँ बनाना, रात्रि में मृत सौभाग्य को लिखना व चित्र बनाना (10) पृथिवी की कुक्षि में माणिक-निर्माण हेतु गौरी के निकट भोजन दान करना (11) ये स्त्री लिंग प्रकाशित करते हैं और किया गया ब्रह्मचर्यव्रत नाशते हैं (12)।

घत्ता—इन सबको छोड़ो, सती स्त्री को खण्डित मत करो। अन्य स्त्रियों को (भी खण्डित) नहीं कराओ। स्त्रीलिंग विनाशक, शाश्वत शासन ब्रह्मचर्य व्रत पालो।2.13।

2.14

जा तिय सच्चइ ण[1] वि परिहरइं[2] । एत्तिय मज्झे एक्कु वि करइं[3] ।1।
मिच्छा-विहाणु मिच्छत्तगई[4] । भत्तार-संग-रस-लुद्धमई[5] ।2।
सा भवि-भवि मरि-मरि होइ तिया । माणइ णव-णव[6] भत्तार सया ।3।
सोहग्ग जोगु चिरू कियउ बउ । तियलिंग ताहु सोहग्ग भउ ।4।
मोहिय सोहग्ग पाव[7] करइ[8] । पावि णिवडइ दुविक यणरइ[9] ।5।
पुणु तिरिय-गइहि दुक्खु सहइ । कुविहाणा फलइ[10] णियाणु[11] लहइ[12] ।6।
तिय-लिंगु ण छंडइ तहि[13] तणउं । चिरकालु दुक्खु सहइ[14] घणउं ।7।
अह[15] मिच्छादेवइ जो तियइं । णियमइण ण पुज्जइं तेत्ति यइं ।8।
ण करइ तिय पुरिसहं कोसणउं । ण वि पुत्तु जोग्गु मणि-सोसणउं ।9।
अण्णाण[16] विहाणु ण[17] आयरइं । सा तिय तियलिंगहो खउ करइं ।10।

घत्ता—सव्विहि कुविहाणहि[18], दुक्ख-णिहाणिहि
जा तिय संताविज्जइ ।
हय[19] मिच्छाकम्मे, जिणवरधम्में,
सासियलि संपज्जइं ।।2.14।

2.14 1. ग–न । 2. क–परिहरए । 3. ग–कइर (इरं में वर्ण विपर्यय है) । क–करए । 4. क–मिच्छतगए, ग–मिच्छतगइ । 5. क–लुद्धमए, ख–लुद्धरइ । 6. ग–नव-नव । 7. ग–पाउ । 8. क–करए । 9. ग–दुक्ख यनइ । 10. ख–फलह । 11. ग–नियाणु । 12. क–लहए । 13 ख ग–तहे । 14. खग–साहइ । 15. क–अइ । 16. ग–अन्नाण । 17. ग–न । 18. ख–विहणेहि, ग–विहाणिहि । 19. क–इय ।

2.14

जो स्त्रियां सबको नहीं त्यागती है, वे इनमें एक का भी (त्याग) करें (1) मिथ्या विधान से मिथ्यात्व गति (होती है) पति संग रस की लोभ बुद्धिवाली (होती है) (2) वह भव-भव में मर-मर कर स्त्री होती है और सदा नये नये भर्त्तारों को सम्मान देती है (3) चिरकाल किया गया व्रत सौभाग्य (पति प्राप्ति) का निमित्त है। स्त्रीलिंग को इसी से सौभाग्य (पति) प्राप्त होता है (4) सौभाग्य को मोहित कर (वह) पाप करती है। पाप में गिरकर दुःख जनती है (5) पश्चात् तिर्यंचगति के दुःख सहती है। (ठीक है) बुरा कार्य फलता है और हेतु स्वरूप प्राप्त होता है (6) उसके द्वारा (यदि) शरीर से स्त्रीलिंग नहीं त्यागा जाता है, (तो वह) चिरकाल तक दुःख सहती है (7) अथवा जो स्त्री नियम से वहां जाकर मिथ्यात्वी देवी-देवताओं को नहीं पूजती है (8) (जो) स्त्री पुरुषों का भण्डार नहीं करती है (अनेक पुरुष नहीं रखती है) और न ही पुत्र के लिए मन का शोषण करती है (9) (जो स्त्री) अन्यान्य विधवाओं से आचरण नहीं करती वह स्त्री स्त्रीलिंग का क्षय करती है (10)।

घत्ता—जो स्त्री सभी कुविधाओं और दुःख के निधान संताप को जीत लेती है (वह) मिथ्याकर्म नाशकर जिनेन्द्र धर्म में शाश्वत् सम्पत्ति पाती है।2.14।

2.15

जा कुगुरु-कुदेवहं[1] परिहरेइ । मिच्छत्तविहाणहो[2] णियमु लेइ ।1।
सा जिणु-पुज्जइ-वंदइ-थुणेइ । जिणु-गावइ[3] जिणधम्मु वि[4] सुणेइ[5] ।2।
जिणदेउ परमगुरु[6] चत्त गंथु । जिणधम्मु परम[7] जगि मोख-पंथु ।3।
जसु णिच्छउ[8] चित्ति समाइ[9] एउ । सम्मत्तु तासु सिव-सुक्ख-हेउ[10] ।4।
महु-मज्ज-मंस[11] पंचुंबराहं । णवणिय[12] संधाणइ सूरणाहं[13] ।5।
एतिय णियम्मु[14] तिविहे करेइ । दिवसइं रइ-संग-णिवित्ति[15] लेइ ।6।
अणथमिउ[16] विमलु पालइ समग्गु । जलुच्छाणिवि रक्खइ जीववग्गु ।7।
णवि[17] कंदमूल भक्खइ कयावि । वहु अंतराइ पालइ[18] सयावि ।8।
दसवंत-सवच्छल-सुद्धभाव[19] । पिय-महुर-वयण-बोलण-सहाव ।9।
पर[20]-दव्व-हरणि थिउ णियमु[21] जासु । णिव्वहइ अणुव्वउ तुरिउ तासु ।10।

घत्ता—पर-पुरिसु ण[22] कंखइ, मुहु ण णिरिक्खइ[23],
ण[24] वि सहासु[25] आलावइ ।
जा तिय मणु-खंचइ, अप्पउ रक्खइ[26],
सा चउत्थउ वउ पालइ[27] ।।2.15।।

2.15 1. कग-कुदेवइ । 2. खग-विहाणहं । 3. ख-गायइ, ग-गाइय (वर्ण विपर्यय) । 4. खग-जि । 5. ग-सोणइ । 6. ग-रउग । 7. कग-एकु, एकक । 8. ग-णिछउ । 9. ख-समावि । 10. ग-सुक्खेहउ । 11. कग-मज्जामिस । 12. ग-नवणिय । 13. ग-सूरणहं । 14. ग-नियमु । 15. ग-निविति । 16. ग-अणथमिव । 17. ग-न वि । 18. ख-पालय । 19. ग-भावि । 20. क-पर । 21. ग-नियमु । 22. ग-न । 23. ग-न निरिकइ । 24. ग-न । 25. क-साहसु, ख-सुहासु । 26. ख-अप्पुणु वचइ, ग-अप्पु न बंचइ । 27. कग-पावइ ।

2.15

(चतुर्थ अणुव्रत-निबहंन हेतु नियम-विचार)

जो कुगुरु-कुदेवों का त्याग करती है, मिथ्याविधान का नियम लेती है (1) वह स्त्री जिनेन्द्र की पूजा करती है, वन्दना और स्तुति करती है, जिनेन्द्र-गीत गाती है तथा जैनधर्म भी सुनती है (2) ससार में चार-जिनेन्द्र देव, जिन गुरु, आगम और जैनधर्म, मोक्षमार्ग है (3) निश्चय से जिसके चित्त में यह समा जाता है, उसका सम्यक्त्व शिव-सुख का हेतु है (4) मधु, मद्य, मांस, पंच उदुम्बर फल, नवनीत (मक्खन), संधान (अचार), सुरन (5) इनका जो तीनों प्रकार—मन, वचन और काय से नियम (त्याग) करता है, दिन में रति-संग से निवृत्ति लेता है (6) पूर्णतः विशुद्ध अनथउ (सूर्यास्त के पूर्व का भोजन) पालता है (करता है), जल छानकर जीवानी की रक्षा करता है (जहां का जल लाया जाता है जीवानी उसी जलाशय में विधिपूर्वक पहुँचाई जाकर जल के जीवों की रक्षा करना (7) कभी भी कंदमूल (भूगर्भ में उत्पन्न होनेवाले पदार्थ) नहीं खाता है, सदैव अन्तराय पालता है (8) दया और वात्सल्य सहित निर्मल-परिणामी, प्रिय-मधुर-वचन-भाषण स्वभावी, (9) पराया द्रव्य हरने में जिसके स्थिर (दृढ़) नियम है, उसके चतुर्थ अणुव्रत का निर्वाह होता है (10)।

घत्ता—जो स्त्री पर-पुरुष की आकांक्षा नहीं करती है, मुंह नहीं निरखती है और न ही मुस्कराते हुए आलाप करती है, मन-अपने वश में करके रखती है, वह चौथे व्रत (ब्रह्मचर्याणुव्रत) को पालती है।2.15।

2.16

पर–पुरिसु–बालु णिय[1] सुय समाणु । चिंतवइ सहोयरु सम जुवाणु[2] ।1।
देक्खइ[3] णिय[4] ताय समाणु थेरु । णिव्वहइ[5] तासु पर बंभचेरु ।2।
एवडउ[6] ण[7] सक्कइ जा करेइ । पर-णरहं[8] संगु विलसइ फिरेइ[9] ।3।
ण[10] वि मयण–ताव सक्कइ[11] सहेवि । संकेयहो गच्छइ छलु लहेवि ।4।
भंजियइ सीलु[12]–माणिक्कु–रम्मु । अप्पाणउ वंचइ करि कुकम्मु ।5।
जा तिय फेडइ अप्पेण अप्पु । तहे किम करि रक्खइ माइ[13] बप्पु ।6।
जहिं भंडारु वि[14] अप्पउ[15] मुसेइ । पाहरिउ रक्ख तस कि करेइ ।7।
पर णर[16]–पसंगु चिंतंतियाहं[17] । अणुदिणु काममिग[18] पलित्तियाहं[19] ।8।
सुय[20]-पियर-भाय[20] मज्झट्ठि[21]याहि । णट्ठु[22]सील[23]-रयणु-सुयणे[24]चिताहि ।9।
विणु सीलें णिवडइं णरय[25]–घोरि । रउरव[26]-तमालि तिय सीलचोरि[26] ।10।

घत्ता—कुल-सीलु ण पिक्खइ[27], अप्पु ण[28] रक्खइ,
वउ ण बंभु णिव्वाहइ[29] ।
णिय हिय अमुणंती[30], अप्पु खवंती[31],
दुग्गइं-दुक्खइं साहइ[32] ।।2.16।।

2.16 1. ग–निय । 2. ख–जुवाणु । 3. ख–देखय । 4. ग–निय । 5. ग–निव्वहइ । 6. ग–एलडउ । 7. ग–न । 8. ग–नरहं । 9. क ख–फिरेवि । 10. ग–न । 11. ग–सच्चइ । 12. ग–सीलु । 13. ख–माय । 14. खग–नि । 15. ग–अप्पइ । 16. ग–नर । 17. खग–चिंतंतियहिं । 18. ग–कमग्गि । 19. खग–पालित्तियाहं । 20. खग–सुय । 20. ब–क–ताय । 21. ख–मज्झि, ग–मज्झे । 22. ग–नट्ठु । 23. ग–सील । 24. क–सुइणिव्वि, ग-सयणे विताहे । 25. ग–नरय । 26. ग-रवरव । 27. ग–सील । 28. ख–देखइ, ग–सीलु न पक्खेइ। 28. ग–न । 29. ग–निव्वाहइ । 30. क–उमुणंति, खग–अमुणंति । 31. खग–खणंति । 32. ग–साहेइ ।

2.16

(पर पुरुष और नारी सम्बन्धात्मक चिन्तन)

जो स्त्री—बालक पर पुरुष को अपने पुत्र के समान और युवा पर पुरुष को सहोदर (औरस भाई) के समान सोचती है (1) वृद्ध (पर-पुरुष) को अपने पिता के समान देखती है, उसके उत्कर्ष ब्रह्मचर्य का निवास होता है (2) जो इतना नहीं कर सकती है। पर-पुरुषों के साथ विलास करती फिरती है (3) काम का ताप (गर्मी) नहीं सह सकती है। छल करके (जार के) संकेतानुसार चली जाती है (4) सुन्दर शील रत्न का भंजन करती है वह इस प्रकार कुकर्म करके अपने को ठगती है (5) जो स्त्री अपने द्वारा अपना विनाश करती है, माता-पिता उसकी रक्षा कैसे करें (6) जहां भंडारी स्वयं चोरी करता है। रक्षक पहरेदार उसका क्या करे? (7) पर-पुरुष-प्रसंग का चिन्तन करती हुई नारी के हमेशा कामाग्नि प्रदीप्त होती है (8) पुत्र, पिता भाई के और परिजनों के बीच स्थित रहते हुए भी उसमें शील-रत्न नहीं (होता) (9) शील को चुरानेवाली स्त्री बिना शील के घोर अन्धकारपूर्ण रौरव नरक में गिरती है (10)।

घत्ता—(ऐसी नारी) कुल और शील नहीं देखती, अपनी रक्षा नहीं करती। ब्रह्मचर्याणुव्रत नहीं निर्वाहती। अपना हित नहीं जानती हुई तथा अपना नाश करती हुई दुर्गतियों के दुःख सहती है।2.16।

2.17

इम जाणे वि सीलु[1] पालिज्जइं । तिविहि पर-णर[2]-संगु ण[3] किज्जइं[4] 11।
णिय पइ[5] संतोसइं अच्छेव्वउ[6] । मणु-पसरंतु तियहि खंचेव्वउ 12।
कय कुसील[7] दुच्चारणि संगें । मइ[8] लिज्जइ ण अप्पु वय-भंगे 13।
सीलु[9] ण खिसइं[10] तेम अच्छिज्जइं । दूअडियाहं पएसु ण किज्जइं[11] 14।
जेम लोगु ण पसारइं अंगुलि । जेम कलंकु[12] ण लग्गइ णियकुलि 15।
जिम कत्थइ[13] ण कोवि उवहासइ । कहइ लोगु जिम एहु महासइ 16।
जेम ण सुयणु लोउ मुहु[14] बंकइ । ण वि इहरत्तु-परत्तु कलंकइ 17।
बंधव-वग्गु ण जिम मुहु मोडइ । जणु अंगुलि अंगुट्ठइ छोडइ 18।
एम सयाहं[15] तियह अच्छंतह । सील-रयणु णिय हियइं धरंतहं 19।
इहरत्ति वि महिमा गरुवत्तणु । देवगइहि परत्ति पुरिसत्तणु 110।
पाविय णर सुर[16] सुक्ख[17] परंपरु । भावि कालि सिव-सुक्खु णिरंतरु 111।

घत्ता—इय वय सविसेसें, गुरु-उवएस,
सीलु-रयणु पालिज्जइ ।
लब्भइ सुहु अविचलु, णासिय कलिमलु,
दुक्खहं भरु खालिज्जइ ।2.17।

2.17 1. ग-सीलु । 2. ग-नर । 3. ग-न । 4. ग-किजइ । 5. क-णिय पय, ग-निय पिय । 6. खग-अच्छिव्वउ । 7. ग-कुशील । 8. क-मय । 9. ग-शील । 10. कग-खसइ । 11. खग-दिज्जइ । 12. ग-कलोंकु । 13. खग-कत्थवि । 14. ग-महु । 15. खग-सयाहि । 16. क-सुर णर । 17. ख-मोक्ख ।

नोट—'ग' पाण्डुलिपि में सर्वत्र शब्द के आदि में 'ण' के स्थान पर 'न' का व्यवहार हुआ है । जगह-जगह 'ण' का प्रयोग भी मिलता है । आगे इस पाण्डुलिपि के ऐसे पाठान्तर नोट नहीं किये गये हैं ।

2.17

(स्त्रियों के लिए ब्रह्मचर्यात्मक व्यावहारिक उपदेश)

इस प्रकार जानकर शील पाला जाता है और तीनों प्रकार (मन, वचन, काय) से पर-पुरुष का साथ नहीं किया जाता है (1) अपने पति को संतुष्ट करते हुए रहा जाना चाहिए तथा फैलता हुआ मन स्त्रियों द्वारा वश में किया जाना चाहिए (2) दुराचारियों के संग से कुशील के लिए अपने व्रत भंग करने में बुद्धि नहीं ले जायी जाती है (3) जिस प्रकार शील नहीं खिसकता उसी प्रकार रहिए। व्यभिचारिणी स्त्रियों का पड़ौस नहीं किजिए (4) जिस प्रकार लोग अंगुली न फैलावें, अपने कुल में कलंक नहीं लगे (6) जिस प्रकार किसी भी जगह कोई भी उपहास नहीं करे और न लोग यह कहें कि ये ही (वे) महाशय हैं (6) जिस प्रकार स्वजन लोग (परिजन) मुख टेढ़ा न करें और न यह लोक एवं परलोक कलंकित हो (7) बन्धु-वर्ग जिस प्रकार मुख न मोड़ें, लोग अंगुलि या अंगुठा नहीं छोड़ें (इशारा) नहीं करें (8) इस प्रकार शील-रत्न हृदय में धारण करते हुए रहनेवाली स्त्रियों की इस संसार में महिमा है, उत्कृष्टता है। पर लोक में देवगति में पुरुष-तन पाकर परम्परा से मनुष्य और देवों के सुख तथा भविष्य में निरन्तर सुखकारी मोक्ष (पाती हैं) (9-11)

घत्ता—गुरु के उपदेश से विशेष कर इस व्रत-शील-रत्न को पालिए और पाप नाश करके अविचल सुख प्राप्त करो तथा दुःख-भार को धो डालिए।2.17।

2.18

जा तिय भत्तारे[1] परिहरिया । दोहग्ग भारि-दुक्खहं[2] भरिया 11
हुंतउ[3] अणहुंतउ कोवि[4] लहु । लाए वि दोसु संगहइ णहु 12
सा तिय उमग्गें मा चलहो । दुज्जण-वयणेहिं[5] मा पडि खलहो[6] 13
मा तसउ मज्झिज्जउ मारु वउ । जिम-किम णिव्वाहइ सीलवउ[7] 14
जिणु-पुज्जउ जिणु-गावउ-थुणउ । चिर पाव-कम्मु महु इय मुणउ 15
विहडउ धणु-परियणु सुहि-सयणु । मा विडहउ सील-महारयणु 16
तेण जि[8] सीलेण वि मुहु घणउं । होसइं धण-बंधव-पियर णउं[9] 17
जिणसासणभासिउ वउ धरउ । मा कुगुरु-कुदेवह थुवइ करउ 18
देखिवि[10] परसिय सोहग्गु-जणे । मा तहो सिहाउ मा सुसउ मणे 19
छडु जिण पहिपालउ सील भरु । तेण जि होसइं तहो सुक्खु चिरु 110

घत्ता—जिण मग्गु चरंतहं, जिणु-सुमरंतहं,
उपसमु-सीलु धरंतियहि[11] ।
णारिहि दुहुच्छिज्जइं, सुहु संपज्जइं,
दुग्गइ-कम्म-विरत्तियहि[12] 12.18।

2.18 1. ग-भत्तारि । 2. खग-दुक्खें । 3. खग-होंतउ । 4. ग-किपि । 5. ग-वयणें । 6. खग-खलउ । 7. ग बंभ । 8. ग-वि । 9. ग-पिय तणउं । 10. खग-देखेवि । 11. ख ग-धरंतियहं । 12. खग-विरत्तियहं ।

2.18

(पतित्यक्ता नारी के योग्य हितोपदेश)

जो स्त्री पति द्वारा त्यागी गयी (वह) दुर्भाग्या भार से भरी होती है (1) घटित और अघटित कोई भी (घटनाएँ) प्राप्त हो जाती हैं। (सदोष) नहीं होने पर भी दोष लगा दिया जाता है (2) वह स्त्री उन्मार्ग से नहीं चले, दुर्जन और खलों की बातों में नहीं पड़े (3) मार से त्रस्त होकर व्रत नहीं छोड़ो। जिस किसी प्रकार शीलव्रत निर्वाहो (4) जिनेन्द्र पूजा करो, जिन-गीत गाओ, जिन-स्तुति करो। मेरे (अपने) पूर्वोपार्जित पापकर्म हैं इस प्रकार जानो (5) धन, परिजन सुखपूर्वक शयन विघटित भले हो जावे किन्तु शीलरूपी महारत्न विघटित न हो (अलग नहीं होवे) (6) उस शील से बहुत सुख होगा, धन, बन्धु, पिता से सुख नहीं होगा (7) जिनेन्द्र-शासन में कहे गए व्रत को धारण करो। कुगुरु और कुदेवों की स्तुति मत करो (8) देखकर और स्पर्श करके भी सौभाग्यशाली जन में उसकी इच्छा मत करो और न मन में सोच करो (9) छोड़ो! जिनेन्द्र के मार्ग का स्मरण करके शील पालो। उसी से चिर सुख होगा (10)।

घत्ता—जिनेन्द्र मार्ग में चलती हुई, जिनेन्द्र का स्मरण करती हुई और उपशम-शील धारण करती, दुर्गतिकारी कर्मों से विरक्त नारियों द्वारा दुख का क्षय और सुख प्राप्त किया जाता है ।2.18।

2.19

जा तिय पुणु विहवत्तणु लहए[1] । भार वयस[2]–जुवाणु[3] बाल समए[4] 11।
सा हियइ सक्कि[5] वि मा डरइं[6] । भत्तार सहेत्ती[7] मा मरइं[8] 12।
मारि वि जंती अवरेहिं जइ । तु वि[9] मरहु[10] म पोटहु मरण भइ 13।
हा हउ[11] णिगु साइणि अज्जु हुया[12] । हो[13] दोण[14] पहिल्ली किण्ण मुया[15] 14।
इय मा[16] आकंदउ[17] मा डरउ । मा भय दोणत्ति सोग्गि पडउ 15।
तिणि सहु संबंधु जि मा करउ । तहो पच्छइ अप्पउ उद्धरउ 16।
जइ अत्थि को वि तहो पुत्तु सुवा । तउ पालउ तउ[18] कुलमग्गि हुआ 17।
सोहग्गु होउ[19] महु अण्ण-भवि । इय वंच्छउ चित्ति[20] कयावि ण वि[21] 18।
दिढु बंभचेरु पालउ विमलु । अणुदिणु सुमरिउ जिणपय-कमलु[22] 19।
तियलिंग-णासु संजमु चरिउ । पुव्विज्जिउ कलिमलु णिज्जरउ 110।

घता—इय आगम-जुत्तिए, जिण-पय–भत्तिए,
कुगुरु–कुदेव परम्मुहहो[23] ।
होइ जि अचिरेण वि, सुहु सीलेण वि
णारिहि णिज्जिय वम्महहिं 12.19।

2.19 1. ख-वहइ, ग-लहइ । 2. ग-वइस । 3. कख-जुवाण । 4. खग-समइ । 5. ग-साहिय धसक्कि । 6. खग-डरउ । 7. ख-सयत्ती, ग-साइत्ती । 8. ग-मरउ । 9. ख-तुमि । 10. खग-मरउ । 11. ग-हुउ । 12.खग-हुअ । 13. ख-हउ, ग हउं । 14. ख-तेण, ग-दोण्णि । 15. ख-मुअ, ग-मुआ । 16. क-माया । 17. खग-आकंदउ । 17. ग-तहो । 18. यह शब्द 'क' पाण्डुलिपि में नहीं है । 20. ग-भित्ति । 21. ग–ण को । 22. ख-जिण पइ जअलु, ग-पय जुयलु । 23. खग-परम्मुहहिं ।

2.19

(विधवा स्त्री–मार्गोपदेश)

जो स्त्री युवा अवस्था (अथवा) बाल्यावस्था के समय में वैधव्य प्राप्त करती है (1) वह हृदय में इन्द्र से भी नहीं डरे (और) पति के साथ नहीं मरे (2) यदि दूसरों के द्वारा (पति का) घात किया जाना जानती हो तो भी उदर-पूर्ति के भय से मत मरो (3) हाय ! मैं निगोड़ी आज शाकिनी हुई (जो पति को खा गई) । हम दोनों में मैं पहले क्यों नहीं मरी ? (4) इस प्रकार रुदन नहीं करो, डरो नहीं, भयभीत होकर दैन्य दुःख और शोक में नहीं पड़ो (5) उनके साथ (मृत पति के साथ) सम्बन्ध मत करो (रखो) । उनके पश्चात् अपना उद्धार करो (6) यदि उसका (पति का) कोई पुत्र-पुत्री है, तो कुलमार्ग में होकर (रहकर) उन्हें पालो (7) भवान्तर में (यह) मेरा सौभाग्य होवे—इस प्रकार की चित्त में इच्छा नहीं करो (8) दृढ़तापूर्वक विशुद्ध ब्रह्मचर्य पालो ! निरन्तर जिनेन्द्र चरण-कमलों का स्मरण करो (9) स्त्रीलिंग का नाश करके संयम धारो और पूर्वोपार्जित पापों की निर्जरा करो (10) ।

घत्ता—इस प्रकार कुगुरु और कुदेवों से विमुख होकर शीघ्र सुखपूर्वक आगम-युक्ति जिनेन्द्र की पद-भक्ति तथा शील से नारियों द्वारा कामदेव निर्जित हो (किया जावे) ।2.19।

2.20

जसु बालत्तणि विहवत्तु हुउ । वल्लहु चिर पाव–फलेण मुउ 11।
सा बाला अप्पउ संवरउ । सरसइं आहारइ परिहरिउ 12।
विदु सील–भारु धर उद्धरउ । पालउ वय मंद कसाय गुणु 13।
मा मंडणु करउ म आहरणु[1] । किय धवलवत्थ–तणु–पंगुरणु 14।
रंगउ मज्जिट्ठउ कप्पडउ । ण वि पहिरउ मयण–रसुक्कडउ 15।
तणु-सिंगारणु जण सिंह[2] हसणु । छंडउ तंबोल दंत–घसणु 16।
तहि फंगि-सारि[3] जूवा-रमणु । परिहरउ[4]–कहाणी–दिण्णगमणु 17।
तहि घिय-बुद्धग्गल-जेवणउ । थोवहि दिवसहि–सिरे–घोव ण्हउ 18।
घर–भित्ति चडिवि दिसि देख ण्हउ । ण्हीसरि पहु कोडु ण्हिरक्ख ण्हउ 19।
तहो उच्च सादि[5] पर–कोस ण्हउ । घर–वहुय धीय सहु रूस णउ 110।

घत्ता—इय अवरइं दोसइं, भुवण असेसइं,
अव्वइ[6] विसु जिम परिहरइं ।
गुरु–धण[7]–वय भूसिय[8], जणहि अदूसिय,
णिय–कुलमग्गें संचरइं[9] 12.20।

2.20 1. क–आलवणु । 2. ख–जणसिहु, ग–जाणसिहुं । 3. खग–सारि फंगि । 4. खग–पर विरहु । 5. ख–सद्दि । 6. ख–सव्वइ । 7. ख–वण, ग–पण । 8. खग–भूसिय । 9. ख–संचरउं, ग–संचरहु ।

2.20

(बाल्यावस्था में वैधव्य प्राप्त बालाओं को आचार-व्यवहारात्मक उपदेश)

जिसका बाल्यावस्था में विधवापन हुआ, चिर पाप-फल से प्रीतम मरा (1) वह स्त्री निज को संवारना (अलंकृत करना) और सरस आहार त्यागे (2) दृढ़ता से शील धारण करके उदार करे। मंद कषाय पूर्वक व्रत पाले (3) शृंगार नहीं करे, आभूषण नहीं धारे, श्वेत वस्त्र से देह आच्छादित करे (ढांके) (4) तीव्र कामरस (कारी) मजीठ के रंग के कपड़े नहीं पहनें (5) शारीरिक शृंगार, वाहन, सिंहासन, पान तथा दन्त-घर्षण छोड़े (6) उसी प्रकार चौपड़ खेलना, जुआ में रमना, कहानी में दिल गमाना छोड़े (7) घी दूध में मलाकर नहीं जीमे और थोड़ा दिन शेष रहने पर सिर नहीं धोवे (8) घर की दीवाल पर चढ़कर दिशाएँ नहीं देखे (और) मार्ग में निकल कर कौतुक मत निरखे (9) दूसरों के कोष (खजाना) को तेज आवाज से मत कहो, घर की बहू और पुत्री के साथ रुष्ट मत हो (10)।

घत्ता—इस प्रकार संसार के अन्य समस्त दोष अभी विष के समान छोड़ो। महत्वपूर्ण व्रत रूपी धन से विभूषित होकर (और) लोगों में अदूषित रहकर अपने कुलमार्ग में संचरो 12.20।

2.21

विणु कज्जे पर-घर[1] परिभमणु । णिसि एल्कलइं वाहिर[2] गमणु ।1।
पहि वेग गमणु अइ मंद गयाइ[3] । दव्वक्कइ पहु अइ अच्छपइ[4] ।2।
इह[5] बहुविह दोसइ[6] सेव णइं । छंडइ[7] कामग्गि-पलेवणइं ।3।
जिव बंभचेरु-वउ णिव्वहइं[8] । इह रत्ति-परत्ति वि सुहु[9] लहइं[10] ।4।
जा पुणु ण विच्छंडइ वय-रहीय[11] । इय दोसइं जे पुव्वें कहीय[12] ।5।
सा हिंडइं[13] णक्कि[14] वाहिरिया । जूठी पातलि जिम उत्तरिया ।6।
विग्गुव्वमाण उग्घाड-सिरी । हट्ठेण हट्ट तहि घरि जि घरी ।7।
णिंदिज्जमाण गरुवत्त-चुवा[15] । सा जीवइ बहुयण जुट्टि हुआ ।8।
जइ किर पुव्वें पइ सरिस धुआ[16] । अह पच्छे सील-विहूण हुआ[17] ।9।
तउ[18] वि हि मणेहिमि तासु चिरु । इह रत्ति-परत्तिवि दुक्ख[19] भरु ।10।
दुक्खिहि[20] दुक्खिउ वुड्डइ णरए[21] । बहुकालेण वि णहु णीसरए[22] ।11।

घत्ता—इय णिय कज्जंतरु, मुणिवि[23] णिरंतरु,
वाल अप्प संवरु करउ[24] ।
उमग्गि म गच्छउ, जिणपहि[25] अच्छउ,
चिर पावहु फलु णिज्जरउ ।।2.21।।

2.21 1. ग-घरि । 2. ग-वाहिरि । 3. खग-गई । 4. ख-गई । 5. ख-इय । 6. ख-दोसहं । 7. खग-छंडउ । 8. ख-णिव्वहए । 9. क-सो । 10. क-लहए । 11. खग-रहिया । 12. खग-कहिया । 13. ख-हंडउ । 14. ख-णक्कें, ग-न कें । 15. क-चु । 16. ख-घुवा, ग-धुवा । 17. खग-हुवा । 18. खग-तो । 19. ग-दुक्खु । 20. खग-दुक्खेहि । 21 ख-णरइ, ग-नरइ । 22. खग-णीसरइ । 23. ख-मुणेवि । 24. ग-करइ । 25. ख-पहे, ग-पह ।

2.21

(नारी दुष्कर्मात्मक—फल और सन्मार्गोपदेश)

बिना काम पराये घर में भ्रमण करना, रात्रि में अकेले बाहर जाना (1) रास्ते में वेग-पूर्वक या अति मन्द गति से जाना, धन के लिए स्वामी के पास अधिक रहना (2) (आदि) यहां बहुत प्रकार के दोष हैं (उनका) सेवन नहीं करो। सन्तापकारी कामाग्नि छोड़ो (3) इस लोक और परलोक में जीव ब्रह्मचर्य व्रत निर्वाहें और सुख प्राप्त करें (4) जो स्त्री इन दोषों को जो पहले कहे गए हैं, नहीं छोड़ती है व्रतरहित रहती है (5) गर्भपात करती हुई सिर खोलकर (रहने-वाली) वह नकटी (निर्लज्जा) नीचे उतरी हुई—(बाहर फेंकी गयी) जूठी पातल के समान हाट-हाट और घर-घर बाहर भ्रमती है (6-7) निन्दित हुई गुरुवत्ता से च्युत वह (नारी) बहु जनों से जूठी होकर (भोगी जाकर) जीती है (8) यदि पहले क्रोध से पति को कम्पित कर देती है और पीछे शील विहीन हो जाती है (9) तो भी निश्चय से मानता हूँ कि वह चिरकाल तक इस लोक और परलोक में दुःख पाती है (10) दुःखों से दुखित होकर नरक में डूबती है और बहुत काल बीत जाने पर भी वहां से नहीं निकलती है (11)

घत्ता—इस प्रकार अपने कार्य के अन्तर को जानकर बाला निरन्तर अपना संवर करे। उन्मार्ग में नहीं जावे, जिनेन्द्र मार्ग में रहे और चिरकालीन पाप-फल की निर्जरा करे। 2.21॥

2.22

चिर-दुक्किय-कम्म-फलेण तिया । वालत्तणेण जा विहव[1] थिया ।1।
सा सरणउ-सरणउ[2] एरिसु करए[3] । मणु खंचइं-इदिय-संवरए[4] ।2।
जिण-वंदण सिर कइ जेत्तियइं[5] । णंदीसरु वारह भंतियइं[6] ।3।
सिर कइ चउवीस सुयंभुयइं[7] । जइमालइ[8] थोत्त समुब्भवइं[9] ।4।
रयणत्तय[10] जग-गुरु उच्छरणउ । अणुपेहउ सुइ[12] णावलि गुणउ ।5।
जिण ण्हवणु गेउ गुणु-सावयहं । संधिउ[13] अणुव्वयहं महावयहं ।6।
एयइ अण्णाण विणासणहं[14] । अवरइ पढेइ[15] जिण-सासणहं ।7।
पुणु कुगुरु कुदेव[16] कुआगमहं[17] । कुविहाणइ दुक्ख-समागमहं[18] ।8।
छंडिवि ति विहेण पहिट्ठवइं[19] । अप्पउ जिण मग्ग[20] परिट्ठवइं ।9।
दय-धम्मु सुरिसि-गुरु देउ-जिणु । इय णिच्छउ पालइ[21] मूलगुणु ।10।

घत्ता—ऊंवर सुर-महु-पलु, अणच्छालिउ[22] जलु,
सूरणु णवाणउ णिसि-असणु ।
णियमें इय दव्वइं[23], छंडइ सव्वइं,
तह अवियाणिय फलगसणु ।।2.22।।

2.22 1. ग-विहवि । 2. ख-सणिउ-सणिउ, ग-सणइ-सणइ । 3. ख-करइं, ग-करउं । 4. ख-संवरइ, ग-णिजरउ । 5. ग-जेत्तियए । 6. खग-भंतियए । 7. ख-सयंभुवइ, ग-संयभुवई । 8. ख-जयमालय, ग-जयमाला । 9. ग-समुज्जवइ । 10. खग-रयणत्तउ । 11. ग-ग गुरु । 12. क-सुया । 13. क-सिधिउ । ग-संपिउ । 14 इस इस यमक का पूर्व पद 'क' पाण्डुलिपि में नहीं है । 15. खग-पढेवि । 16. खग-कुदेउ । 17. खग-कुआगमई । 18 खग-समागमई । 19. ख-परिट्ठवइ । 20. खग-मग्गे । 21. ख-पालउ । 22. खग-अणछालिउ । 23. यह 'अंश ख' पाण्डुलिपि में नहीं है ।

2.22

(बाल-विधवा-नारी-सन्मार्गोपदेश)

चिरकालीन दुष्कर्मों के फल से जो स्त्री बाल्यावस्था में वैधव्य में स्थित हुई (1) वह धीरे-धीरे ऐसा करे—मन को सकोचे और इन्द्रिय-संवर करे (2) जिन स्त्रियों के द्वारा सिर से (सिर झुकाकर) बारहवें द्वीप नन्दीश्वर की जिनेन्द्र वन्दना और भक्ति की जावे (3) सिर से (सिर झुकाकर) चौबीस तीर्थंकरों की जयमाल और स्तुतियां निर्मित की जावें (4) अगत गुरु से रत्नत्रय पूछो (समझो), अनुप्रेक्षाओं और पवित्र नामावलि को गुनो—(बार-बार कहो) (5) जिनेन्द्र-स्नपन (अभिषेक) करें और श्रावक के गुण गायें। अणुव्रत और महाव्रतों का अनुसन्धान करो (6) और अज्ञान नाश करने को जिन शासन को पढ़े (7) कुगुरु, कुदेव, कुआगम-दुःख समागम के विधान हैं (8) इनके मार्ग में स्थित होना मन, वचन, काय तीनों से त्याग करके अपने जिनेन्द्र मार्ग में स्थित रहो (9) दया ही धर्म है, सुऋषि (निर्ग्रन्थ मुनि) गुरु हैं, जिनेन्द्र देव हैं। इस प्रकार निश्चय से मूल-गुण पालो (10)।

घत्ता—पंच उदम्बर फल, मदिरा, मधु, मांस, अनछना जल, सूरन, नवनीत (मक्खन), रात्रि-भोजन तथा अज्ञात फल-भक्षण इन सबको छोड़ो, नियम लो।2.22।

2.23

सव्वइ संधाणइं मूलकंद । पंच वि साणइं वहु कुसुमविंद ।1।
एयाइ अजुत्तइं मणि मुणेइ[1] । वइंगण अणम[2] जुत्तिहि मुणेइ[3] ।2।
तिविहिं वज्जइ दयलीण चित्त । पंचिंदिय-रस-गिद्धिहि विरत्त ।3।
जीवहं करुणायरु मुणिवि[4] तच्चु । ण वि भासइ पर-अणहिउ असच्चु ।4।
णियमइ परिहरइ[5] अदत्तदाणु । तहि बंभचेरु पालइ[6] पवाणु ।5।
तण्हइ-विमुक्क संतोसलीणु । थिर पयडि णिरच्छुय मयविहीणु[7] ।6।
णवि दिसउ णिहालइ पहि चलंति । चल्लइ चरणइ-अग्गिउ णियंति ।7।
णवि वहु हुंडइ वय-भंग-भीय । सव्वहमि-सवच्छल गुरु-विणीय ।8।
सोवइ ण दिवसि[8] णवि सुण्ण-गेहि । ण वि करइ खेड्डु कासु वि सणेहि ।9।
जिम-जिम पोढत्तणे[9] अंगु लेइ । तिम-तिम वहु संजमभरु वहेइ[10] ।10।

घत्ता—जोवण-भर सज्जिय[11], वार दुइज्जिय,
भोयण-णियमु परिट्ठवए[12] ।
एक्कासणें संट्ठिया, वय उक्कंट्ठिया,
बाला-विहव[13] कम्मु-खवइ ।2.23।

2.23 1. ख-मुणेवि, ग-मुणिवि । 2. कख-आगमि । 3. खग-मुणेवि । 4. ख-मुणेवि, ग-मुणिवि । 5. क-परिहर । 6. ख-पावइ । 7. ख-थिर पयडि णिछकमइ विहीण । 8. ग- दिवने, क-थिर पडिय (वर्ण विपर्यय) णिरच्छय । 9. खग-पोढत्तणु । 10. ग-धरइ । 11. ख-पज्जिय । 12. ख-परिट्ठुवइ, परिट्ठवइ । 13. ग-विहिव ।

(विधवा नारी आचार–निर्देश)

सभी संधान (अचार आदि), कंदमूल, पांचों प्रकार—(बीज, मूल अग्र, पर्व कन्द अथवा स्कन्ध) की सब्जियां, कुसुम-गुच्छ इत्यादि को मन में अनुपयुक्त जानो। बैंगन (भी) अनुपयुक्त सुना जाता है (1–2) पांचों इन्द्रियों की रस-लोलुपता से विरक्त (तथा) दया रत चित्त होकर मन, वचन, काय तीनों प्रकार से (इन्हें) छोड़ो (3) जीवों की दया करो, तत्वों को जानकर पर-अनहितकारी असत्य नहीं बोलो (4) बिना दी हुई वस्तु को लेना छोड़ो, नियम लो। प्रमाणपूर्वक ब्रह्मचर्य पालो (5) तृष्णा से मुक्त होकर संतोष में लीन रहो और गर्वरहित होकर स्थिर प्रकृतियों का (चार अनंतानुबन्धी एवं तीन मिथ्यात्वादि (क्षय करने में लगे रहो (6) राह में चलते हुए दिशाएँ मत निहारो। चलते हुए चरणों के आगे देखो (7) व्रत-भंग होने से भयभीत होकर बहुत मत भ्रमण करो। सभी पर स्नेह युक्त रहो, गुरु के प्रति विनीत (होकर रहो) (8) दिन में नहीं सोवे, निर्जन घर में नहीं सोवे और न किसी भी स्नेही (रिश्तेदार का वियोग होने पर) के प्रति खेद करें (9) ज्यों-ज्यों अंग (देह) प्रौढता प्राप्त करता है त्यों-त्यों संयम भार में प्रवृत्ति करे (10)।

घत्ता—सम्पूर्ण यौवन सजाया गया, दूसरी बार (इस प्रवृत्ति को) रोको। भोजन का नियम संस्थापित करो। एकासन में स्थित होकर व्रत में उत्कण्ठित विधवा बाला कर्मों का क्षय करती है। ॥2.23॥

2.24

गावइ[1] णरुहुक्कउ विरह-गेउ । ण वि दोहा कहइ[2] ण गेहु[3] भेउ 11।
सोवइ ण रयणि[4] णिंदा-गहिल्ल । पच्छिम-णिसि उट्ठइं जण-पहिल्ल 12।
जय कारिवि[5] जिणु-भत्तिए थुणेवि । परमेट्ठिहि णवकारइ गुणेवि[6] 13।
वाला जिणु वंदइ जिम विहाणु । पुणु जाय[7] विहारिवि सुणि वखाणु 14।
जिणु-ण्हवणु देखि आवइ घरम्मि । संजुत्तियाविणि गेह-कम्मि[8] 15।
मज्झण्णइं कर-चरणइं धुएवि । जिण-पय[9] पुज्जइ-वंदण करेवि 16।
पुणु मउणें भुंजइं एक्क वार । किय अंतराय बहुविह[10] पयार 17।
तिहि[11] संज्झइ[12] जिण-वंदण करेइ । पुणु गेउ रासु[13] संधिउ पढेइ 18।
णिसि सव्वकाल सोवइ सजग्ग । वय-णियम-सील पालइ समग्ग 19।

घत्ता—इय विहि संजुतिय, जिण-पय[14]-भत्तिय[15]
राय-दोस सिहि[16] उवसमइ ।
परिमुक्क कसायहि, सुललिय-वायहिं,
वाला णिच्च काल गमइं 12.24।

2.24 1. ख-गावइ । 2. ग-काहइ । 3. खग-गाह । 4. ग-नरयणि । 5. ख-जइ । 6. ग-थुणेवि । 7. खग-जाइ । 8. ग-कम्मु । 9. ख-पइ । 10. क-विय । 11. ख-तहं । 12. ग-सिज्जइं । 13. क-रस । 14. ख-पइ । 15. ग-भयय भत्तीए । 16. ग-सहि ।

2.24

(विधवा नारी-जीवन-चर्या)

कोई भी मनुष्य विरह-गीत नहीं गावे, न दोहा कहे न घर का भेद (1) रात्रि में गहन निद्रा में नहीं सोवे। रात्रि में अन्तिम पहर में जगता के पहले उठ जावे (2) जिनेन्द्र-भक्ति, स्तुति करके परमेष्ठी के नवकार (मन्त्र) का जाप करे (3) स्त्री जिनेन्द्र की वन्दना करके शास्त्रोक्त रीति से जीमे। पश्चात् विहार में जाकर प्रवचन सुने (4) जिनेन्द्र का अभिषेक देखकर घर आवे और गृहकार्य में लग जावे (5) मध्याह्न में हाथ-पैर धोकर जिनेन्द्र की पाद-पूजा करके वन्दना करे (6) पश्चात् बहुत प्रकार के अन्तराय करके (अन्तरायों का विचार करके निरन्तराय) एक बार मौन से भोजन करे (7) तीनों संध्याकालों में जिनेन्द्र वन्दना करे। पश्चात् रास गावे और पुस्तक की सन्धि का पाठ करे (8) रात्रि में सर्व काल सजग होकर सोवे और समग्र रूप से व्रत, नियम और शील पाले (9)।

घत्ता—इस प्रकार जिनेन्द्र-चरण-भक्ति में संलग्न होकर राग-द्वेष जनित अग्नि का उपशमन करो। कषायों को छोड़कर सुन्दर वचनों से बाला (अपना समय) निश्चय काल में बितावे ॥2.24॥

2.25

उववासइ पुणु उवसंत मणु[1] । अट्ठमि-सुचउदसि मूलगुणु[2] 11
तह रिसि[3] पंचमि-उववास विहि । णिदुक्खिय-सत्तमि सोक्ख णिहि 12
मुक्तावलि कम्मह णिज्जरिया । सुह संपइं बहु सोक्खं करिया 13
दुद्धारसि तह सुगंधदसइं[4] । रूपिणु विहि पुणु समाधिदसइं 14
कल्लाण पल्ल चंदायणइं । अट्ठाहिय तह चउरातणइ[5] 15
इय विविह विहाणइ[6] जुत्तियइं[7] । संत्तिए[8] उववासहि तेत्तियइं 16
मिहुणु-णियमेविणु बउ चरइं । पुणु पच्छइ सण्णासइ[9] मरइं 17
उप्पज्जइं सग्गि सुहोइ सुरु । माणइ दिव्वइ सोक्खाइं चिरु 18
अह ण लहइ सण्णासें मरइं[10] । तउ होइ राउ महि उद्धरइं[11] 19
चिरु रायलच्छि सुहु अणुहवइं । अवसाणें जिण पहि तउ-तवइं 110
अमरालइ होइ सुरिंदु पुणु । देविय सुहु भुंजइ दिव्वत्तणु 111

घत्ता—पुणु लहइ णरत्तणु, तव-मंडिय तणु,
केवलणाणुप्पावइं ।
वय-बंभ-पहावें, हय-संतावें,
जीव-मोक्खु-सुहु पावइं 12.25।

2.25 1. खग-मण । 2. खग-मूलगुण । 3. कग-सिरि (वर्ण विपर्यय) । 4. ग-सुगंधदसमि । 5. ग-चउरत्तणइं । 6 क-विविहाणइं । 7. खग-जेत्तियइं । 8. ग-सा तिय । 9. खग-सण्णासें । 10. ख-मरणु, ग-मरण । 11. ख-उधरणु, ग-उद्धरण ।

2.25

(व्रतोपवास एवं फलाख्यान)

पश्चात् मूलगुण स्वरूप अष्टमी-चतुर्दशी का उपशान्त मन से उपवास करे (1) ऋषि-पंचमी और सुख निधि दुःखहरण-सप्तमी (मोक्ष सप्तमी) का उपवास करे (2) कर्मों की निर्जरा करनेवाला, सुख-सम्पत्ति तथा बहु सुखकारी मुक्तावली (व्रत करे) (3) कठिनाई से निर्वाह होनेवाले सुगन्धदशमी व्रत के पश्चात् विधिपूर्वक समाधिदशमी व्रत करे (4) परस्पर-कल्याण, चन्द्रायण और इसी प्रकार अष्टाह्निक (व्रत करे) (5) इस प्रकार विविध व्रत-विधाओं में संलग्न रहते हुए शान्तिपूर्वक वे स्त्रियाँ उपवास करें (6) मैथुन का नियम लेकर व्रताचरण करें, पश्चात् सन्यास-पूर्वक मरें (7) (वे) स्वर्ग में उत्पन्न होकर देव होती हैं और चिरकाल तक दिव्य सुख का अनुभव करती है (8) अथवा (यदि) सन्यासमरण प्राप्त नहीं करती है तो राजा होकर पृथ्वी पर उद्धार करती है (9) चिरकाल तक राजलक्ष्मी के सुख का अनुभव करती है और अवसान-काल में जिनेन्द्र मार्ग में तप तपती है (10) पश्चात् स्वर्ग में सुरेन्द्र होती है और दिव्य देह से दिव्य-सुख भोगती है (11)।

घत्ता—पश्चात् नर-तन पाकर और तप से देह सुसज्जित करके केवलज्ञान उत्पन्न करती है। ब्रह्मचर्यव्रत के प्रभाव से सन्ताप नष्ट करके जीव मोक्ष-सुख पाते हैं ॥2.25॥

2.26

तह पुणु बाला[1] बालाइ जाइ[2] । अण्णाण भावि अच्छंतियाइ ।11।
वय-बंभहो मुणिउ ण अंतरंगु । णिय सीलहो किउ बहु वार भगु ।12।
वय-भंग[3] करंतिहि तहिअ जुत्तु । गउ कालु तुच्छु अहवा बहुत्तु ।13।
सा बाला पुणु एरिसु करेइ[4] । वय-भंगइ[5] बुड्डय[6] मा मरेइ[7] ।14।
णिदिवि गरहिवि णिय पावकम्मु । विसु जिम छंडिवि मिच्छत्तधम्मु ।15।
पच्छुताउ[8] पुणु तहि[9] करंति । दुक्किय कम्मिहि मणु संवरंति[10] ।16।
समत्तु-लेइ छंडिवि कसाउ । सह मूलगुणहि[11] उपसंत-भाउ ।17।
सव्वह समाणु परिहरिवि वइरु[12] । बउ पालउ णिम्मलु बंभचेरु ।18।
जिउ मोक्खकारि तहि होइ धम्मु । पच्छित्तउ[13] सव्वु खालइ कुकम्मु ।19।
अह हुवउ[14] पमाइ[15] ण सील छेउ । करि पाव-छित्तु[16] तउ[17] पुणु वि लेउ ।10।

घत्ता—बालत्तणि जोव्वणि, अह वुढत्तणि,
सुणिवि जु वुज्झवि अप्प हिउ ।
बंभ-वउ पालइं, णिय मणु खालइं
सो पावइ णिव्वाण-पउ[18] ।2.26।

2.26 1. ख-मुणइं, ग-मुढइं । 2. ग-बालइयाइ । 3. खग-वय भंगु । 4. खग-करेउ । 5. खग-भंगे । 6. ख-वुडिय, ग-वुड्डिय । 7. खग-मरेउ । 8. ख-पछुतावउ, ग-पच्छुतावउ । 9. खग-पुणि । 10. क-संभरंति, ग-संवरंति । 11. ख-मूलगुणेहि, ग-मूलगुणिहि । 12. ख-वेरु । 13. ख-पछिलउ, पच्छिलउ । 14. ख-हुअउ, ग-हुअउ । 15. ख-पमाएं, ग-एमाए । 16. खग-पायछित्तु । 17. खग-तो । 18. क-णिव्वाणउ ।

2.26

(अज्ञानी विधवा नारी कर्त्तव्य)

उसी प्रकार अज्ञानी युवतियां अज्ञान भाव में रहती हैं (1) (उन्होंने) अन्तरंग में ब्रह्मचर्य व्रत नहीं जाना और अपने शील को बहु बार भंग किया है (2) व्रत-भंग करते हुए ठीक है उसका थोड़ा या बहुत समय चला गया है (3) वह बाला ऐसा करे (कि) व्रत-भंग में डूबकर नहीं मरे (4) अपने पाप कर्म की निंदा और गर्हा करके विष के समान मिथ्यात्व धर्म त्यागे (5) पश्चाताप करे पश्चात् दुष्कर्मों से मन को संवरण करे (6) कषायों का त्याग करके सम्यक्त्व और मूलगुण सहित उपशान्त भाव ग्रहण करे (7) वैर त्याग कर सभी को समान (मानें) और निर्मल ब्रह्मचर्यव्रत पाले (8) जीव-पश्चाताप करके सभी कुकर्म धो डालता है। (यह) धर्म उसे मोक्षकारी होता है (9) अथवा प्रमादी होकर शील मत छेदो। पाप-छेदन करके उसे पुनः ग्रहण करे (10)।

घत्ता—(जो) बाल्यावस्था, यौवनावस्था अथवा बुढापे में अपना हित सुन, समझकर अपने मन को धो डालता है (मलिनता) दूर कर देता है) और ब्रह्मचर्यव्रत पालता है, वह निर्वाण पद पाता है ॥2.26॥

2.27

जो इय वय जुत्तिय[1] बंभ वउ । जिरण-पहि[2] परियाणिवि[3] अप्प हिउ ।1।
णिम्मलु णिव्वाहइ णारि-णरु । सो पावइ सुक्खु तिलोय-वरु ।2।
जो एण विहाणें[4] ण वि चरइ[5] । वउ बंभचेरु अण्णाण मइं[6] ।3।
णिय कज्जु चुक्कु सो णारि-णरु[7] । मरि-मरि साहइ दुक्खाइ[8] चिरु ।4।
इय णिय हिउ जाणिवि अप्प वसु । अप्पाणु पियारउ अत्थि जसु ।5।
जो[9] दुक्खइ वीहइ रत्ति-दिणु । जो चाहइं अविचलु सुहु-रयणु ।6।
सो मिच्छत्तागम परिहरउ । णिम्मलु जिण-सासणु अणुसरउ ।7।
णिय सत्तें[10] बंभचेरु चरउ । मिच्छत्त दोसुम उक्खउ करउ ।8।
संसार-दुक्खु लहु अवहरइ । सो मोक्ख-महापुरि पइसरइ ।9।
वउ-बंभचेरु जह मुणिउ[11] मुणे[12] । तह मइ संखेवे भणिउ जगे ।10।

घत्ता—छरव्वुब्भासणु अक्खलिय-सासणु,
परम बंभुह यरइ वरु ।
मह सरणु[13] जगुत्तमु, फेडिउ भव-तमु,
वड्ढमाणु तिहुवणहं गुरु ।2.27।

इय अप्प संबोहकव्वे । सयल जणमण सुहंकरे ।
अवलावालसुह बुज्झ पयडत्थे ।
बीओ संधी परिच्छेउ समत्तो (संधि 2)

2.27 1. ख–जुत्तिय ए । 2. ग–दिण पहि । 3. ग–परियाणेवि । 4. ग–विहाणइ । 5. ग–णिव्विवरइ । 6. यह यमक 'ख' पाण्डुलिपि में नहीं है । 7. ख–यह अंश भी 'ख' पाण्डुलिपि में नहीं है । 8. सुक्खाइ । 9. क–सो । 10. खग–सत्तिए । 11. क–मणिउ । 12. क–मणे । 13. क–महोसणु ।

2.27

(ब्रह्मचर्यव्रत—फलात्मक चिन्तन एवं सदुपदेश)

जिन मार्ग में अपना हित जानकर जो इस ब्रह्मचर्यव्रत से युक्त है (1) (जो) नर-नारी इसे विशुद्धता से निर्वाहता है, वह तीनों लोकों में श्रेष्ठ सुख पाता है (2) जो अन्यान्य मतवाले ब्रह्मचर्य व्रत का नियमानुसार पालन नहीं करते हैं (3) वे नर-नारी अपने कार्य से च्युत होकर (और) मर-मर कर चिरकाल तक दुःख पाते हैं (4) जिसे अपने से प्यार है वह अपना हित (कल्याण) अपने आधीन जाने (5) जो रात दिन दुःखों से डरता है, जो अविचल-सुख रूपी रत्न चाहता है (6) वह मिथ्या आगम (कुशास्त्र) त्यागे और निर्मल जिनेन्द्र-शासन का अनुशरण करे (7) अपनी शक्ति के अनुसार ब्रह्मचर्य आचरे, मिथ्या दोषोन्मूलन करे (8) शीघ्र संसार दुःख दूर करे (और) मोक्ष महा नगरी में प्रवेश करे (9) लेखक कहता है ब्रह्मचर्यव्रत जिस प्रकार मुनियों से जाना है उसी प्रकार मैंने संक्षेप से मनुष्यों में कहा है (10)।

घत्ता—छह द्रव्य प्रकाशित करनेवाले, सभी पर शासन करनेवाले, परम ब्रह्मचर्य के आचरणी, उत्तम शरण, जगत में श्रेष्ठ, त्रिभुवन के गुरु हे वर्द्धमान ! संसार का (अज्ञान) अन्धकार विनाशो ॥2.27॥

इस प्रकार आत्म संबोध काव्य में सभी लोगों के मन को सुखकर अबला बाला का सुख बोध प्रकट करनेवाली दूसरी सन्धि, दूसरा परिच्छेद समाप्त हुआ (सन्धि-2)।

तृतीय-परिच्छेद

तिविहें वंदेउ[1], वड्ढमाणु अंतिमउ जिणु[2]।
कम्मक्खय-हेउ, भासमि वउ-पंचमउ पुणु (छ)

3.1

परिग्गह-पमाणु-वउ-पंचमउं । पयडमि हरिसिय[3] संसार-खउ ।1।
परिग्गह-विड्ढिहि[4] आरंभ भरु । तेण जि उप्पज्जइं कम्मु गुरु ।2।
कम्में संसारे जीवु[5] भमइ । संसार-भमणि दुक्खइ सहइ[6] ।3।
इय मुणिवि परिग्गह दुह-जणणु । सव्वहं छंडणि[7] असमत्थु पुणु ।4।
बहु तेण अणुव्वउ अणुचरइ । परिग्गहहु जि देस नियमु[8] करइ ।5।
घर-खित्त-कणय-मणि-कुप्पयाहं[9] । धण-धण्णहं दुप्पय[10] चउप्पयाहं ।6।
णिय वढमाणि अणुसारि लहु । सइ करिवि पमाणु-परिग्गहु[11] ।7।
णिय किय धणसंखहो अग्ग लहो । णरु अच्छइं णियमु लएवि तहो ।8।
संखा मत्थ वि जं णवि चयउ । तं चिय असमत्थें तं लयउं ।9।
परिग्गहु[12] भवहेउ मुणंतु मणे । अच्छइ तिविहेण विरत्तु जणे[13] ।10।
सामत्थु[14] लहिवि काले मुवइं । सिव हेउ महावउ[15] तउ तवइं ।11।

घत्ता—सुगहिय समत्तु, णाण वियक्खणु, चरणरइ।
महो वयहो असक्कु, तेण अणुव्वइ णरु धरइं ।।3.1।।

3.1 1. क-वदेप्पिणु। 2. क-वीर जिणेसरु, ख-सम होंति महावीर जिणु। 3. ग-पयडमि दरासिय। 4. ख-विधिए, ग-विड्ढिए। 5. खग-जीउ। 6. ख-मरइ, ग-रमइ। 7. खग-छंडणे। 8. क-देस निमु। 9. ख-कुप्पयहं, कोप्पयहं। 10. क-दुप्पय। 11. कखग-परिग्गहहो। 12. ग-पिरिग्गहु। 13. ग-जणि। 14. ख-समत्तुणइ वि। 15. महाउहु।

तृतीय-सन्धि

(परिग्रह-परिमाण-व्रत स्वरूप एवं फल)

(कवि-कथन) मन, वचन और काय तीनों प्रकार से अन्तिम जिनेन्द्र (चौबीसवें तीर्थंकर) वर्द्धमान की वन्दना करने के पश्चात् कर्मक्षय के हेतु—पाँचवें परिग्रह-परिमाण-व्रत को कहता हूँ (ध्रु)।

3.1

(परिग्रह और परिग्रह-परिमाण-व्रत-चिन्तन)

पांचवां परिग्रह-परमाणु व्रत संसार क्षय दर्शाता है/प्रकट करता है (1) परिग्रह की वृद्धि-आरम्भ भरी होती है। उससे महान् कर्म उत्पन्न किए जाते हैं (2) कर्मों से जीव संसार में भ्रमता है और संसार-भ्रमण में दुःख सहता है (3) इस प्रकार परिग्रह को दुःखों का जनक जानकर पूर्ण रूप से त्यागें। फिर (यदि पूर्ण रूप से त्याग करने में) असमर्थ हैं (4) (तो परिग्रह परिमाणव्रत का) अणुव्रत के रूप में आचरण करो और परिग्रह का देश नियम करो (देशव्रत पालो) (5) घर, खेत, स्वर्ण, मणि और वस्त्रों का, धन-धान्य का तथा द्विपद और चतुष्पदों का (6) स्वयं परिग्रह-प्रमाण करके प्रमाण के अनुसार ग्रहण करो (7) अपनी (निश्चित) की गयी धन-संख्या के आगे (धन) प्राप्त होने पर उसका नियम लेनेवाले मनुष्य अच्छे होते हैं (8) जो संख्या (हो वह) मस्तिष्क से नहीं त्यागो (और) उसे (संख्या) लेकर (उसके निर्वाह में) असमर्थ होने पर चिंता पर (चढ़ जावे किन्तु त्यागे नहीं (9) परिग्रह को मन में संसार-हेतु जानकर जन तीनों प्रकार से (मन, वचन, काय) विरक्त रहते हैं (10) सामर्थ्य के अनुसार (यह नियम) लेकर (पश्चात्) मोक्ष हेतु महाव्रत-तप तपें और समय पर मरें (11)।

घत्ता—बुद्धिमान भली प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्ज्ञान प्राप्त करके सम्यक्चारित्र आचरें। (यदि) महाव्रत में असमर्थ हों तो अणुव्रत धारें ॥3.1॥

3.2

णिय इंच्छइ[1] धण–संख्या[2] सरेइ[3] । लक्खद्ध–लक्खु अह दुइ करेइ[4] ।1।
अहियहो दविणहो[5] जो णियमु लेइ । सो लोह–महावलु उवसमेइ ।2।
अहवा असि–मसि–किसि–चालणेहि । वाणिज्ज–सेव पसु[6]–पालणेहि ।3।
जो धणु वड्ढावइ वय–अयाणु । णिय संखहि अहिउ पवट्ठमाणु ।4।
देखे वि पुणु जो[7] धम्में वि देवि[8] । तउ[9] तहो ण अणुव्वउ तं हवेइ ।5।
जासु जि किर दविणहो खय णिमित्तु[10] । लउ दविण–संख अणुव्वय[11] पवित्तु ।6।
तं चिय ण लोहु छंडइ अयाणु । जो तहो पंचमउ ण वय[12]–पमाणु ।7।
जो गाढ लोहु तण्हइं पलित्तु । दिणु–रयणि किलसइं[13] धण–णिमित्तु ।8।
बहु विह वावार वियंभिएहि । संवरइ ण मणु आरंभएहि ।9।
उपसमिउ[14] ण लोह कसाउ जासु । परिग्गह–पमाणु कहि होइ तासु ।10।

घता—जिण–सत्थु सुणेवि, णिय पर–तच्चु–सरूउ मणें ।
बुज्झिवि[15] भव्वेहि[16], विज्जइ[17] णिम्मलु वउ भुवणे ।3.2।

3.2 1. ग–अछइ । 2. ख–संघा । 3. ख–सरिवि, ग–सरेवि । 4. ख–करेवि । 5. ग–दविणहि । 6. क–पहु । 7. खग–जइ । 8. खग–देइ । 9. खग–तो । 10. क–णिमित्ति । 11. ख–अणुव्वउ, ग–अण्णव । 12. खग–वउ । 13. खग–किलीसइ । 14. खग–उवसमिउ । 15. ख–वुज्झेवि । 16. ग–सव्वेहि । 17. क–विज्जइ ।

3.2

(परिग्रह-परिमाणव्रत हेतु लोभ त्याग-परामर्श)

अपनी इच्छानुसार आधी लाख, एक लाख अथवा दो लाख धन की संख्या (निश्चित) करो (और) स्मरण रखो (1) जो अधिक धन का नियम लेता है, वह महाबलवान् लोभ का उपशमन करता है (2) अथवा असि, मसि, कृषि, व्यापार, सेवा कार्य और पशुपालन के द्वारा (3) व्रत की अज्ञानता से जो अपनी की हुई संख्या प्रमाण से अधिक में प्रवृत्ति करते हुए धन वृद्धि करता है (और) फिर उसे जो धर्म में देता है तो उसके वह अणुव्रत नहीं होता है (4-5) निश्चय से जिस धन के क्षय के निमित्त (कारण) है (उस) धन की संख्या, पवित्र अणुव्रत स्वरूप लो (निश्चित करो) ("जो अज्ञानी"-चिता पर पहुंचने तक) लोभ नहीं त्यागता है उसके पांचवाँ परिग्रह-प्रमाण-व्रत नहीं (7)। तृष्णा से प्रदीप्त प्रगाढ लोभ से जो धन के निमित्त रात-दिन दुःखी होता है (8) जँभाई लेते हुए बहुत प्रकार के व्यापार (करता है), मन का संवरण नहीं करता, आरम्भ करता है (9) जिसकी लोभ कषाय उपशमित नहीं हुई, उसके परिग्रहप्रमाण कैसे होवे (10)।

घत्ता—जिनागम सुनकर और भव्य जनों से निज-पर तत्त्व-स्वरूप को समझकर संसार में निर्मल परिग्रह-परिमाणव्रत फैलावे (प्रसार करे) ॥3.2॥

33

जेण परिग्गह-संख लइज्जइ । लोह-कसाउ-तेण सामिज्जइ 11।
जिम-जिम[1] लच्छि-पमाणहो पुज्जइ । तिम-तिम मोह जासु मणि छिज्जइ 12।
धणु-संखहि आसण्णु[2] णियंतउ । बहु ववसायहि मं दुहवंतउ 13।
दाण-सील-पूजा-उववासहि । गमउ[3] कालु भव दुःख विणासहि 14।
अहवा भव्वु को वि ण रु जइ पुणु । वउ पडिगाहइ परियाणिय[4] गुणु 15।
एक लक्ख सीमइ संजुत्तउ । दविणहो लक्खग्ग[5] लहो विरत्तउ[6] 16।
जइवि तासु सहसो वि ण पुज्जइ । बहु ववसायह कहिमि ण जुज्जइ[7] 17।
सो मणि भव्वु ण एहउ जाणउ । हा[8] कहि किउ मइ लच्छि पमाणउ[9] 18।
मइ जाणिउ[10] किर लक्खु हवेसइ[11] । महु दालिद्दु एहु जाएसइ 19।
तिणि मइ किउ वउ लक्ख पमाणइं । एवहि तं सहसु वि ण समाणइं[12] 110।

घत्ता—भल्लउ वउ एहु, लक्ख णिमित्तें जं लयउ ।
माहप्पे तासु, एकु वि सहसु ण महो[13] भयउ ।।3.3।।

3.3 1. क-मल । 2. क-आसणु वि । 3. ग-गमइ । 4. क-परियणेवै, ख-परियाणैवि । 5. क-लक्खग्ग । 6. क-णिरत्तउ । 7. क-पुज्जई । 8. क-हउ । 9. ख-पवाणउ । 10. क-जाणिव्वउ । 11. क-लक्खुह सेसइ । 12. इस यमक का उत्तर पद ख पाण्डुलिपि में नहीं है । 13. खग-महु ।

3.3

(परिग्रहप्रमाणव्रत-साधनाविधि)

जिसके द्वारा परिग्रह-संख्या ली जावे (निश्चित की जावे) उसके द्वारा लोभ कषाय का शमन किया जावे (1) ज्यों-ज्यों जिसके लक्ष्मी-प्रमाण की पूर्ति होती है, त्यों-त्यों मन में मोह छीजता (क्षीण होता है) (2) धन-प्रमाण-संख्या समीप दिखाई देने पर बहु व्यवसाय में दुःखी मत हो (3) दान, शील, पूजा और उपवास में समय व्यतीत करो (तथा) संसार दुःख को नाशो (4) अथवा यदि कोई भव्य पुरुष व्रत के गुण जानकर (उसे) ग्रहण करता है (धारण करता है) (5) (वह) एक लाख (धन) की सीमा से युक्त होकर एक लाख धन प्राप्त होने पर आगे विरक्त रहता है (6) यदि उसके हजार भी नहीं पूजता है (पूर्ण होता है) (तो) बहु व्यवसाय में वह कहीं भी नहीं लगता है (7) (जिस) भव्य (पुरुष) ने मन में यह नहीं जाना, उसने हाय ! लक्ष्मी प्रमाण में बुद्धि कहाँ की ? (नहीं की) (8) मैंने जाना (कि) निश्चय से लखपति हो जाऊँगा। मुझसे दरिद्रता इसी से जायेगी (9) इस बुद्धि से एक लाख का प्रमाणव्रत किया गया (किन्तु) इस प्रकार उसे हजार भी नहीं आये (10)।

घत्ता—यह व्रत भला है जो लाख (धन) के निमित्त लिया। उसके माहात्म्य से मेरे एक हजार (धन) भी नहीं हुआ ॥3.3॥

3.4

इय भावहि जं धणु चाहिज्जइं । मुणिहि अणुव्वय तं ण कहिज्जइ ।11।
संखा-अहियहो[1] भव्व णिरुत्तउ[2] । धणु-संक्खहिं[3] णवि अधु[4] विढत्तउ ।12।
तउ[5] संखा पूरणह णिमित्तें । लोहु ण किज्जइ तण्हा[6]-तत्तें ।13।
जं जि अत्थि किर जं वि ठविज्जइ । जं चिर कम्मफलेण संपज्जइ ।14।
तेण जि णिज्जिय तण्हा-दोसे । अच्छिज्जइं भव्वहिं[7] संतोसें ।15।
जिम-जिम घरि वहु लच्छि ण वड्ढइ । तिम-तिम णहु आरंभु पयट्टइ ।16।
विणु आरंभ कम्म-भरु[8] छिज्जइ । कम्म-खय सिव-सुहु संपज्जइ ।17।
एउ[9] मुणेवि लच्छि अण जंतिहि[10] । अत्थि रत्ति जणु संतावंतिहि ।18।
णियय[11] अणाइमि[12] तण्ह-कुणंतिहि । आरंभह भवदुक्ख-जणंतिहि ।19।
हरिण वि लोहु संतोसु-रमिज्जइ[13] । कट्ठु वि सव्विव्वउ[14] पालिज्जइ ।10।

घत्ता—जइ लच्छि ण होइ, चिर दुक्किय कम्महो फलेण ।
तउ छंडिवि लोहु, वउ किज्जइ विढमइ वलेण ।3.4।

3.4 1. ख-अहियहु । 2. ख-विरत्तउ । 3. क-संक्ख । 4. क-अधु विण (शब्द विपर्यय) । 5. ग-सो । 6. ख-तण्हइ । 7. ख-भव्विहि, ग-भव्विय । 8. ख-तरु । 9. क-इर । 10. ख-हुंतिहिं । 11. क-णिचय । 12. ख-अणावमि, ग-अणोवमि । 13. ख-रहिज्जइ । 14. ख-साहिवि सुवउ ।

3.4

(सन्तोषपूर्वक परिग्रहपरिमाणव्रतग्रहण-परामर्श)

इन भावों से जो धन चाहा जाता है (तो) उसे अणुव्रत नहीं कहा जाता है (ऐसा) जानो। (1) भव्य-निश्चित अधिक संख्यात्मक धन के परिमाण का आधा अर्जित नहीं करे (2) परिमाण-संख्या-पूर्ति के निमित्त तृष्णा से तृप्त होकर लोभ नहीं किया जावे (3) निश्चय से जिस (अर्थ के लिए) स्थापनाएँ की जाती हैं, वह पूर्वोपार्जित कर्म-फल से प्राप्त होता है (4) इससे भव्य पुरुष द्वारा तृष्णा-दोष जीता जावे और सन्तोषपूर्वक रहा जावे (5) ज्यों-ज्यों घर में लक्ष्मी बढ़ती है, त्यों त्यों आरम्भ नहीं होने से कर्म-भार कम होता है, और कर्म-क्षय से शिव-सुख प्राप्त होता है (7) ऐसा जानकर लक्ष्मी के नहीं जाने पर अर्थी जन रात में सन्तापित होते हैं (8) भव-दुःखोत्पादक आरम्भ और अनादि से की जाती हुई अपनी तृष्णा-लोभ वृत्ति का नाश करके संतोष में रमण किया जावे। कठिन होते हुए भी सभी के द्वारा व्रत पाला जावे (10)।

घत्ता—पूर्वोपार्जित दुःखकारी कर्मों के फल से यदि लक्ष्मी नहीं होती है तो लोभ छोड़कर स्वमति से बलपूर्वक व्रत किया जावे ॥3.4॥

3.5

घणु होइ ण जइ ववसायएहिं । तउ कच्छेण[1] वि थिर सावएहिं[2] ।1।
वउ किज्जइ करिवि उदारि-चित्तु । संसार-खयंकरु सिव-णिमित्तु ।2।
तहो वयहो पहावें[3] गलइ दुक्खु । संपज्जइ णर-सुइ-सिद्धि[4]-सुक्खु ।3।
अइ जइ कासु वि थिउ लक्खु वित्तु[5] । तहो[6] लक्खग्ग लहो जु णियमु चित्तु[7] ।4।
तहो वउ पालंतहो घरहु दव्वु । चिर-पाव-फलेण जि जाउ सव्वु[8] ।5।
तउ णिय[9] मणि चिंतइ एउ ण भव्वु[10] । वय गहणे जं महु गइउ सव्वु ।6।
चिर पावें जं जि पणट्ठु कोसु । लाइज्जइ सुवयहो तणउ[11] दोसु ।7।
ण वि दुक्खु अत्थि वय पालणेण । किं जलइ अग्गि जलहर[12] जलेण ।8।
इय भाउ मुणेवि[13] उवसंतएण । वय गहणु ण मुच्चइं संतएण ।9।
अरुहागमि[14] बुज्झि वि वयहो भेउ । णिव्वहि वि जइ सिव-सुक्ख-हेउ ।10।

घत्ता—संसारि णिवासु, जीवह चउ[15]-गइ-दुह-सहणु[16] ।
तहुच्छेय-णिमित्तु[17], किज्जइ[18] भविहिं वय-गहणु । .5।

3.5 1. खग-कट्ठेण । 2. ग-सावहिं । 3. ग-पहावइ । 4. ग-सिद्ध । 5. क-चित्तु 6. खग-तुहु । 7. क पुत्तु । 8. इस यमक का उत्तरपद 'ख' पाण्डुलिपि में नहीं है । 9. क-पाण्डुलिपि में यह शब्द नहीं है । 10. यमक का पूर्व पद 'ख' पाण्डुलिपि में नहीं है । 11. खग-तण्ण । 12. क-जलणइं । 13. क-मणेवि । 14. क-अरुहो-गमें । 15. क-चउ । 16. क-दय गहणु । 17. क-जयणे चीचित्त । 18. क-दिज्जइ ।

3.5

(दुःख व्रत से नहीं, चिर-पाप से होता है)

यदि व्यवसाय से धन नहीं होता है तो कठिनाई से भी श्रावकों द्वारा स्थिर (रहा जावे) (1) मोक्ष के निमित्त संसार-क्षयकारी-व्रत उदार चित्त करके (हो करके) किए जावें (2) उन व्रतों के प्रभाव से दुःख गल जाता है (और) मनुष्य (एवं) देव संबंधी सुख (तथा) शिव-सुख प्राप्त होता है (3) अथवा यदि किसी के लाखों का धन है (तो) उसके लक्ष-धन के आगे प्राप्ति का नियम ग्रहण किया जावे (4) उस व्रत के पालन करते हुए पूर्वोपार्जित पाप-फल से (यदि) घर का सम्पूर्ण धन चला जावे। (5) तो भव्य पुरुष अपने मन में यह नहीं विचारे (कि) व्रत-ग्रहण से जो मेरा (था वह) सब चला गया (6) जो पूर्वोपार्जित पाप से कोष (धन) नष्ट हुआ (तो) व्रत का दोष (पर दोष) लाया जाता है (7) व्रत पालन करने से दुःख नहीं (होता) है। क्या मेघवृष्टि-जल से अग्नि जलती है ? (8) इस प्रकार के विचार जानकर सन्त पुरुष द्वारा उपशान्त भाव से ग्रहण किया गया व्रत नहीं छोड़ा जावे (9) अर्हत्-आगम से व्रत-भेद समझकर शिव-सुख हेतु निर्वाहे जावें (10)।

घत्ता—संसार में जीवों को चारों गतियों के दुःख सहना (पड़ते हैं)। उन दुःखों के उच्छेदन हेतु भव्य जनों द्वारा व्रत ग्रहण किया जावे ॥3.5॥

3.6

अहवा जइ पुणु जसु किंपि लच्छि । घरि अत्थि ण किर तुच्छु वि चलच्छि ।1।
सो एउ[1] ण चिंतइ णियइ चित्ति । कहि मह[2] परिग्गहु[3] किर कह[4] णिमित्ति ।2।
जइ होइ दविणु ता संख णेउ । विणु दविणहो[5] कहो संखा करेउ[6] ।3।
अण हुंतिहि लच्छिहि जं[7] पमाणु । किज्जइ तं किर जणि हासट्ठाणु[8] ।4।
णिय हियइ वियप्पि वि कोवि एउ । मा वय-हणणे ढिल्ला करेउ ।5।
धणु अत्थि णत्थि तं अवरु पक्खु । विणु विढ वएण लब्भइ ण सुक्खु ।6।
जइ दविणु णत्थि किर जणिय मोहु । तउ जीवहो अत्थि अणंतु लोहु[9] ।7।
वउ लयउ जेण दविणहो[10]-पमाणु । छिज्जइ तहो लोहु अणंतमाणु ।8।
तं लोहु अणंतहो होइ छेउ । तं णरहु[11] अणुव्वउ कहिउ एउ ।9।
धणु तुच्छु होइ[12] अहवा बहुत्तु । अहवा किंपि मा होउ[13] वित्तु ।10।
जिणि छिण्णु[14] लोहु वउ अत्थि तासु । तसु वउ ण अत्थि बहु लोहु जासु ।11।

घत्ता—णरु मंद-कसाउ, जिम-जिम छिण्णइ लोहु मणे[15] ।
तिम-तिम वउ तासु, हुंतइ अण हुंतइं जि धणे[16] ।।3.6।।

3.6 1. ग-ए । 2. ग-मुहु । 3. ग-परिग्गहु । 4. ख-किहि, ग-कहि । 5. ख-दवणे । 6. क-सरेउ । 7. यह शब्द 'ख' पाण्डुलिपि में नहीं है । 8. ग-हासथाणु । 9. ग-यह यमक 'ग' पाण्डुलिपि में नहीं है । 10. ख-दविणहु । 11. खग-णरहो । 12. खग-होउ । 13. ग-हुउ । 14. क-जो णिच्छणु । 15. ख-मणि । 16. क-धरे ।

3.6

(धन-लोभ और परिग्रहपरिमाणव्रत)

जिसके घर कुछ थोड़ी लक्ष्मी है अथवा थोड़ी भी चली गयी है (1) तो अपने चित्त में इसकी चिन्ता नहीं करे (बल्कि) कहे (कि) मेरा परिग्रह निश्चय से किस निमित्त है (2) यदि धन होता है तो संख्या (परिमाण संख्या) ली जाती है। बिना धन के कहो (क्या) (परिमाण-संख्या) की जाती है ? (3) लक्ष्मी के नहीं होने पर जो परिग्रह-प्रमाण किया जाता है उसे निश्चय हँसी का स्थान जानो (4) अपने हृदय में ऐसा विचार करके कोई भी व्रत ग्रहण करने में ढील मत करो (5) धन है अथवा नहीं यह और पक्ष है (किन्तु) दृढ़ व्रत बिना (कोई भी) सुख नहीं पाता है (6) मोहोत्पादक यदि धन नहीं है तो जीव के अनन्त लोभ है (7) जिसके द्वारा धन का (परिग्रह का) प्रमाणव्रत लिया गया उसके अनन्त मान और लोभ का क्षय होता है (8) उसके अनन्त लोभ का क्षय होता है और उसी मनुष्य के अणुव्रत कहा जाता है (9) धन थोड़ा हो या बहुत अथवा धन कुछ भी न हो (10) जिसका लोभ क्षीण हो गया है, व्रत उसी के हैं। जिसके बहु लोभ हैं, उसके व्रत नहीं (11)।

घत्ता—मन्द कषायवाला मनुष्य मन में ज्यों-ज्यों लोभ-क्षय करता है, उसके त्यों-त्यों व्रत होता है (लोभी) धनवान के नहीं होता। 3.6।।

3.7

अह अत्थि घरिहि जइ सिरि असंख । तउ[1] करइ भव्वु णिय दविण-संख ।1।
जाणि वि वहु जीवणिसुंभयाइं । छंडिवि ववसायारंभयाइं ।2।
पंचमु वउ धरइ अलोहमाणु । कय पोसह सील सु पुज्जदाणु ।3।
जइ किर बहुत्तु घरि होइ दव्वु । तउ किज्जइ मणि ण कयावि गव्वु ।4।
अह दविणु ण जइ घरि किंपि होइ । दीणत्तु ण किज्जइ हियह[2] तो वि ।5।
लच्छी चंचल खणि दिट्ठ णट्ठ । णिच्छउ जाणे परिहरि वितिट्ठ ।6।
समता-भावें[3] उवसंत-बुद्धि । तुहु अच्छहि कय जिण-वयण सुद्धि ।7।
सिरि आगमि-विगमि[4] समण्ण-चित्तु । हय लोहु एहु वउ रिसिहि[5] वुत्तु ।8।
वय-चरणें कालें होइ मोक्खु । मोक्खु वि तह अक्खय[6] अणंत-सुक्खु ।9।
संसार वि दुक्ख-णिवारणेण । वय कहिय[7] मोक्ख सुह कारणेण ।10।

घत्ता— जिम-जिम महि एहु[8],
छिज्जइ वहु धण-तण्ह-सिहि ।
तिम-तिम जण एहु,
सोयत्तु होइ लहेवि विहि ।1.7।

3.7 1. खग–तो । 2. ख–हियइ, ग–हिय । 3. ग–भवि । 4. खग–आगमे-विगमे । 5. ख–सिरिहि । 6. क–हीइ ।
7. क–कहय । 8. खग–हिय बाहु ।

3.7

(लक्ष्मी-सद्भाव-असद्भाव-कालीन कर्त्तव्य)

यदि घर में असंख्य लक्ष्मी है, तो भव्य पुरुष अपनी लक्ष्मी-संख्या (परिमाण) करे (1) बहु जीवों का विनाशक जानकर व्यापार का आरम्भ छोड़ो (2) लोभ और मान से रहित होकर पांचवें परिग्रह-परिमाण-व्रत को धारो। प्रोषधोपवास, शील, पूजा तथा दान करो (3) यदि निश्चय से घर में बहुत द्रव्य हो जाता है, तो मन में कभी भी गर्व नहीं किया जावे (4) अथवा घर में यदि कुछ भी धन नहीं होता है तो भी हृदय को दीनता से दुःखी नहीं किया जावे (5) लक्ष्मी चंचल है, क्षण भर दिखाई देकर नष्ट हो जाती है। निश्चय से (उसे) अस्थिर जानकर छोड़ो (त्यागो) (6) तुम जिन-वचन-शुद्धि, समता भाव और उपशान्त-बुद्धि से रहो (7) लक्ष्मी के आगमन और निर्गमन में समान चित्त से लोभ को नाशो। यह व्रत ऋषियों द्वारा कहा गया है (8) व्रत के आचरण से समय पर मोक्ष होता है और वह मोक्ष-अक्षय-अनन्त सुखकारी (होता है) (9) सांसारिक दुःखों के निवारण और मोक्ष-सुख के कारण से व्रत कहे गये हैं (10)।

घत्ता—इस पृथ्वि पर जैसे-जैसे बहु धन तृष्णाग्नि क्षय होती है, वैसे-वैसे यह मनुष्य धैर्य प्राप्त करके शीतल (शान्त) होता है ॥3.7॥

3.8

अह धरिहि[1] हरायउ किं पि वत्थु । बहु-तुच्छु जाइ जइ मणि-पसत्थु[2] 11।
तउ[3] मंद-कसायहिं[4] तासु जोगु । फिरि-फिरि संताविज्जइ ण[5] लोगु 12।
कासु वि पुणु लाइज्जइ ण दोसु । ण वि किज्जइ कट्ठु ण हियइ[6] सोसु[7] 13।
जइ चोरु मुसिवि[8] लइ जाइ दव्वु । तउ चोरहो गालि ण देइ भव्वु 14।
ण वि वुरहउ चिंतइं[9] तहि[10] णिमित्तु । वय-लोएउ लोह-विमुक्क चित्तु 15।
अह चोरु वि जइ लद्धउ समोसु । तउ[11] तहो णिग्गहइं ण करिवि रोसु 16।
अह धणु जइ[12] छिण्णि वि कोइ लेइं । बलिबंडइं[13] अह भोलइ-हरेइं[14] 17।
तउ[15] तहु उप्परि मुच्चइ कसाउ । लच्छियहि जेण णासण-सहाउ 18।
वह[16] अग्गिहि दज्झे वि सयलु जाइं । धणु अह कहमि[17] वीसरि उट्ठाइं 19।
अह वंचिवि लइं गउ को वि धुत्तु[18] । बहुतो वि ण झूरइ तहो णिमित्तु[19] 110।

घत्ता—भव-दुक्खहं मूलु, पवि-कवाहु सासय-सुहहो ।
एउ[20] दविणु णराहं[21], तेण णियमु जुज्जइ बुहहो[22] 13.8।

3.8 1. खग-धरहु । 2. खग-पयत्थु । 3. खग-तो । 4. ख-कसाइहि । 5. यह शब्द 'क' पाण्डुलिपि में नहीं है। 6. ग-हिय । 7. ख-दोषु । 8. ख-मुसेवि । 9. खग-तो । 10. खग-तहो । 11. खग-तो । 12. खग-जइ धणु (वर्ण विपर्यय) । 13. खग-बलिबंडए । 14. क-भरेइ । 15. खग-तो । 16. ख-तह जइ, ग-अह जइ । 17. खग-कहिमि । 18. क-धत्तु । 19. ख-णिचित्तु । 20. ख-इउ, ग-इय । 21. ग-णराहं । 22. खग-बुहहु ।

3.8

(धनापहरण और चोर के प्रति मन्द कषाय)

घर में बहुत तुच्छ (कम मूल्य की) अथवा श्रेष्ठ मणि कोई भी वस्तु चुरा ली जाती है (1) तो मन्द कषाय के द्वारा बार-बार लोगों को नहीं सताया जावे (2) किसी पर भी दोष नहीं लाया जावे और न हृदय में कठिन सोच (चिन्ता) किया जावे (3) यदि चोर द्रव्य चुराकर ले जाता है, तो भव्य पुरुष चोर को गालियां नहीं देवें (4) व्रत में लीन रहते हुए लोभ विमुक्त चित्त से चोरी के निमित्त (चोर का) बुरा भी नहीं चिंते (5) अथवा यदि चोर (चुराई गई वस्तु) सहित पकड़ा जावे तो उसका क्रोध करके दमन नहीं करे (6) अथवा यदि कोई धन छीन लेता है, अथवा बलवान-सरल व्यक्ति को हर लेता है (7) तो उसके ऊपर कषाय (क्रोधाधिक करना) छोड़ो। लक्ष्मी विनाश-स्वभावी है (8) अथवा कहता हूँ कि समस्त धन अग्नि द्वारा जला दिया गया। (उसे) भुलाकर उठो (9) अथवा कोई धूर्त ठगकर ले गया। तो उस (गये धन के) निमित्त बहुत दुःखी मत हो (10)।

घत्ता—(धन) सांसारिक दुःखों का मूल है, शाश्वत सुख के वज्र-किवाड़ है (किवाड़ बन्द रहने से सुखागमन हो नहीं पाता (इससे बुद्धिमान् मनुष्यों के लिए धन का नियम उचित है) ॥3.8॥

3.9

जइ पुणु माणुसु-वल्लहउ को वि । विहडइ तिय[1]-पुरिसु वि भुवणि तो वि[2] ।1।
अइ सोउ[3] ण[4] किज्जइ तहि णिमित्तु । जाणिवि[5] अथिरु सुहि सयणु मित्तु ।2।
पुव्वज्जिय कम्मफलेण लोइ[6] । जइ पुत्तु-जम्मु किर घरि ण होइ ।3।
तउ[7] तासु णिमित्ति[8] मणि-किलेसु । किज्जइ ण किंपिहय कम्म[9] लेसु ।4।
जो संसारिहि[10] विद्धिहि-वि रत्तु । सो कि धिज्जइ[11] तासु वि णिमित्तु ।5।
जं चिर लेखउ लहण्उ मुआलि[12] । विहडिय घर[13] धणु अंतरिउ कालि ।6।
सइच्छिक्कि[14] वि मुक्कउ करिवि दव्वु । सहु लोहें[15] मुच्चइं तं जि भव्वु ।7।
जइ भो लउ कासु विसरिसु जाइं । सो अलियइं सव्वइ सउहक्खाइं[16] ।8।
तिणि सरिसु ण[17] किज्जइ एहजुत्ति[18] । जं[19] तुज्झु पासि लय हउ[20] परत्ति ।9।
लिज्जइ ण इगारह गुणउ पुणु । तासु वि ण देइ जो सो जि धणु ।10।
देसउ परत्तियउ[21] वडउ-वित्तु । इय सउहं[22] ण करइ सयाण चित्तु ।11।

घत्ता—जिम किम करि तासु,
रंजिवि अप्प बहुत्त एण[23] ।
णिल्लोह मणेण,
अच्छिज्जइ जिण-भत्तएण ।।3.9।।

3.9 1. ग-विहडतिइय (तिइ में वर्ण विपर्यय) । 2. खग-ताइ । 3. ख-सोव । 4. ग-नि । 5. खग-जाणेवि 6. क-होइ । 7. खग-तो । 8. खग-णिमित्तें । 9. कग-धम्म । 10. ख-संसारहो, ग-संसारहि । 11. ख-सिइजइ । 12. ख-जं चिर लहणउ लेखउ मुवालि, ग-जं चिर लहणु लेखउ मुवालि । 13. क-घर । 14. खग-सईछे । 15. ख-लोहि । 16. खग-सवहं । 17. ग-न । 18. क-एक । 19. इसके आगे का भाग 'ख' पाण्डुलिपि में नहीं है । संभवतः चौबीसवां और पच्चीसवां पत्र खो गया है । 20. यह शब्द 'क' पाण्डुलिपि में छूटा हुआ है । 21. ग-तुउ एउ । 22. ग-सवहं । 23. ग-बहुत्तरण ।

3.9

(कवि कृत उपदेश-सार)

यदि मनुष्य (या उसकी) प्रियतमा—कोई भी स्त्री-पुरुष संसार में विघटित होता है, तो भी स्वजन और मित्र के सुख को अस्थिर जानकर, उसके निमित्त अति शोक नहीं किया जावे (1–2) पूर्वोपार्जित कर्मों के फल से लोक में यदि घर में पुत्र-जन्म नहीं होता है, तो उसके निमित्त मन में क्लेश नहीं किया जावे, थोड़ा कर्म घात किया जावे (3–4) जो संसार-बन्धन में मग्न है, वह उन बन्धन निमित्तों में क्या धैर्य रखता है (अर्थात् नहीं) (5) जिसे चिर स्थायी समझकर प्राप्त किया, वह धन अन्त समय में मरनेवाले से विघटित हो जाता है (6) इसलिए हे भव्य! इच्छित द्रव्य प्राप्त करके त्याग दो, साथ ही लोभ (भी) त्यागो (7) अरे! यदि किसी का लेकर भूल जाता है तो वह सभी प्रकार की झूठी कसमें खाता है (8) उसके समान नहीं किया जावे। यह ठीक है। जो तेरे पास है (वह) परलोक में लिया हुआ है (9) गुणवान ग्यारहवीं (प्रतिमा) नहीं लेवे। जो उनका धनी हो वह भी नहीं देवे (10) एक देशव्रत-परलोक का बड़ा महत्वपूर्ण धन है। चतुर चित्तवाला इसकी सौगन्ध (नियम) नहीं करे (11)।

घत्ता—जिस किसी प्रकार उसे करके अल्प या बहुत प्रसन्न होकर निर्लोभ मन से जिनेन्द्र भक्त के द्वारा रहा जावे ॥3.9॥

3.10

लागणउ दिवि[1] जगि को वि णरु । वंचिज्जइं ण वि उद्धरिय भरु ।11।
अह तुज्झु वि जइं लागणउ पुणु । देविणु पणट्ठु[2] किर कोवि जणु ।12।
तो णिय किउ कम्मु जि णिच्छ रहि । उत्तरहु-पडुत्तरि मा रडहो ।13।
हारउ जि एहु[3] एहु[4] जि जिणउ । चिंतवहि एहु[5] मा दुह जणउ ।14।
अह-णिसु पइ जिण-पय[6] संभरणु । तुहु करहि जीव-हय जम्मरणु[7] ।15।
वहु विह भेयहि अवरेहि पुणु । अह[8] आगमि वुत्तउ वयह[9] गुणु ।16।
तह तं वुज्झवि णिव्वाहियए[10] । णिव्वाण-सुक्खु फुड साहियए[11] ।17।
पंचह पावह हिंसाइयहं । जं[12] किर परत्ति[13] दुहदाइयहं ।18।
तं दुगइ ण पावइ सा वयहं[14] । ।19।
तं मुणिवि[15] जिणागमे भणिउ वउ । फेडिय दुह दरिसिय सुक्ख-पउ ।110।

घत्ता—जा किर सव्व विरत्ति,
तं मुणि चरिउ महव्वउ[16] ।
तहो असमत्थु चरेइ,
देसहु विरहु[17] अणुव्वउ ।3.10।

3.10 1. ग-देवि । 2. ग-पणट्ठ । 3. क-एहुजि । 4. 'क' पाण्डुलिपि में यह शब्द छूटा हुआ है । 5. ग-पउ । 6. ग-पय जिण (वर्ण विपर्यय) । 7. खग-इस यमक का यह उत्तर पद 'क' पाण्डुलिपि में छूटा हुआ है । 8. खग-जिह । 9. ग-वयहो । 10. क-णिव्वाहियइं । 11. इस यमक का उत्तर पद 'क' पाण्डुलिपि में छूटा हुआ है । 12. क-जे । 13. ग-विरत्ति । 14. यह अर्द्धाली 'ग' पाण्डुलिपि में नहीं है । 'क' पाण्डुलिपि में केवल यह पूर्वपद ही है, उत्तर पद छूटा हुआ है । 15. ग-मुणहि । 16. क-तं मुणिउ चरिउ महावउ । 17. ग-विरइ ।

3.10

(व्रताचरणात्मक-सदुपदेश)

स्वर्ग या संसार में जोड़नेवाला (धन) कोई भी मनुष्य ठगाया जाता है, (संसार या स्वर्ग) भार से उद्धरित नहीं हो पाता (उद्धार नहीं कर पाता) (1) यदि तुमने भी फिर जोड़ा है तो किसी भी मनुष्य को देने से (तू) निश्चय से भागा है (2) उत्तर-प्रत्युत्तर में रुदन मत कर, निश्चिन्त रह। निर्जाजित कर्म हैं (3) विजयी से हारना-यही विजय है। दुःखोत्पादक है, इसकी चिन्ता मत करो (4) तुम रात-दिन जिनेन्द्रपदों का स्मरण करो और जीव के जन्म-मरण का घात करो (5) अथवा आगम में उपकारी व्रतों के अन्य अनेक भेद बताए गए हैं (6) समझ बूझकर उनका निर्वाह करो और निर्वाण-सुख प्राप्त करो (7) जो निश्चय से परलोक में भी दुःखदायी हैं (वे) हिंसादिक पांच पाप हैं (8) व्रतों से (जीव) दुर्गति नहीं पाता (9) जिनागम में कहे गए व्रत जानकर दुःख दर्शानेवाले का विनाश करके, सुख पाओ (10)।

घत्ता—निश्चय से जो सभी प्रकार से विरक्त है वह मुनि-महाव्रत आचरे। यहाव्रतों में असमर्थ उदासीन एक देश-अणुव्रत आचरे ॥3.10॥

3.11

इय संखेवें हय-गव्वयाइं । पंच वि भासियइ अणुव्वयाइं 11।
जो पालइं सो तिहु गइ ण जाइं । उप्पज्जइ सुर गइ विमल ठाइं 12।
वउ हवइ तासु इय पंच भेउ । जो अरुहागमे बुज्झिवि अणेउ 13।
बुज्झइ परमागमु पुणु वि सोइ । जसु तच्चत्थह सद्दहणु होइ 14।
तच्चत्थइं[1] तहो समत्तु जाणु । विणु[2] सम्मत्तें ण वि होइ णाणु 15।
विणु णाणें चारित्तु वि अलक्खु । विणु चारित्तें लब्भइ[3]ण मोक्खु 16।
विणु मोक्खें सुह लेसु वि ण होइ । तेण जि सम्मत्तु महंतु लोइ 17।
दिढु करि सम्मत्तु लहेवि णाणु । वउ विज्जइ कइ णिव्वुइ णिहाणु 18।
णिय सत्तिहि अणुसारेण लेइ । पालिज्जइ दिढ वउ गुरु णिओइ[4] 19।

घत्ता—सम्मत्त-बलेण, णाणु लहेवि[5], चरेवि[6] चरणु ।
साहिज्जइ मोक्खु, भव्विहि[7] भव्वहु[8] दुह-हरणु[9] ।3.11।

इय अप्प संबोहकव्वे । सयल जणमण सवण सुहयरे ।
अवलावालसुह बुज्झ पयडत्थे ।
तीओ संधी परिच्छेओ समत्तो (संधि 3)
इति आत्म संबोध ग्रन्थ समाप्तः ।।

3.11 1. क-ता चउत्थइ । 2. ग-किणु । 3. ग-लब्भइ। 4. ग-निउइ । 5. ग-लहेवि । 6. ग-चरिवि । 7. ग-भव्वहि । 8. ग-भवाहु । 9. ग-अवहरणु ।

(काव्य सम्बन्धी काव्यकाराभिमत)

इस प्रकार गर्व रहित होकर पांचों अणुव्रत कहे गये है (1) जो पालता है, वह तीन गतियों—नरक, तिर्यंच और मनुष्य गति में नहीं जाता है। (वह) सुरगति के निर्मल स्थान में उत्पन्न होता है (2) जो अर्हन्त के आगम में अनेक प्रकार से समझाया गया है, उस व्रत के (अणुव्रत के) इस प्रकार पांच भेद होते हैं (3) जिस तत्वार्थ से श्रद्धा होती (उत्पन्न होती) है, वह परागम से समझो (4) उस तत्वार्थ से सम्यक्त्व जानो। ज्ञान-बिना सम्यक्त्व के नहीं होता है (5) बिना ज्ञान के चारित्र भी नहीं देखा गया और बिना चारित्र के मोक्ष-प्राप्ति (6) बिना मोक्ष के लेश मात्र भी सुख नहीं होता है। इसलिए लोक में सम्यक्त्व महान् है (7) सम्यक्त्व दृढ़ करके ज्ञान प्राप्त करने पर व्रत होता है। कवि (इस) निधान से निवृत्त होता है (इस रचनात्मक कार्य से विराम लेता है (8) गुरु के नियोग में अपनी शक्ति के अनुसार व्रत लेवे और वह दृढ़ता से पालन किया जावे (9)।

घत्ता—सम्यक्त्व-बल से ज्ञान प्राप्त करके आचरण आचरे और भव्य जनों के दुःख को दूर करनेवाला मोक्ष, भव्य जनों द्वारा प्राप्त किया जावे ॥3,11॥

इस प्रकार "अप्प संबोह कव्व" में सभी लोगों के मन और कानों के लिए सुखकर, बाल-अबलाओं के सुख-समझ को प्रकट करनेवाली, तीसरी सन्धि (परिच्छेद) पूर्ण हुई।

(इति "आत्म संबोध ग्रन्थ" समाप्त)

प्रशस्ति

संवत 1534 वष श्रावण सुदि पंचमी भौमवासरे, श्री मूलसंघे कुंदकुंदाचार्यम्नाये, भट्टारक श्री सिंघकीर्ति, तस्य सि (शि) ष्य श्री प्रचंडकोत्तिदेवात् । तस्य सि (शि) ष्य मंडलाचार्य श्री सिंहणंदि इदं आत्म संबोध ग्रन्थ लिष्य (ख्य) तं कर्म्मक्षय निव्यत्य (निवृत्यर्थं) (सु) (शु) भमस्तु ।

कार्य-समाप्ति
१५ अगस्त १९९३
रविवार
श्री महावीरजी नाम्नि नगरे
श्री महावीर दिगम्बर जिनमन्दिरे

प्रशस्ति

सम्वत् 1534वें वर्ष के श्रावण मास में शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि, मंगलवार दिन में श्रीमूलसंघ-कुन्दकुन्दाचार्यान्माय में हुए भट्टारक श्री सिंघकीर्ति के प्रशिष्य और श्री प्रचण्डकीर्ति के शिष्य मण्डलाचार्य श्री सिंहनन्दि ने यह "आत्म संबोध ग्रन्थ" कर्मों की निवृत्ति के लिए लिखा था। मंगल हो।

१५ अगस्त १९९३
रविवासरे
श्रीमहावीरजी नाम्नि नगरे
श्रीमहावीर दिगम्बर जिनमन्दिरे पूर्णमिदं कार्यम्।

विशिष्ट-शब्द-सूची

शब्द		हिन्दी अर्थ	सन्धि, कडवक, यमक-संख्या
		(अ)	
अट्ठाहिय	=	आष्टाह्निक पर्व	2/25/6
अणम	=	नहीं	2/23/2
अण्णाण	=	अज्ञान	2/22/7
अणुदिणु	=	दिन-प्रतिदिन	2/16/9
अणुहरमाणी	=	समान	2/3/3
अनुबन्ध	=	सम्बन्ध	2/3/5
अप्पणउ	=	अपना	2/9
अप्पाणु	=	अपना	2/27/5
अप्पुणु	=	स्वयं	1/12/3
अमुणिय	=	अविदित	1/5/1
अवरुंड	=	आलिंगन करना	2/8
अवहर	=	दूर करना	1/6/3, 2/27/9
अवहत्थ	=	त्याग करना	1/1/7
अवे	=	अब	1/10/6
अह	=	अथ	1/19/8
		(आ)	
आकंद	=	रोना	2/20/5
आयहि	=	इसमें	1/6/4
आवइ	=	आपत्ति	1/1/8
आवज्ज	=	प्राप्त करना	1/5
आसण्ण	=	समीप	3/3/3
		(इ)	
इयउ	=	ज्ञात, गया हुआ	1/10/2
इहरत्त	=	इस संसार में	2/17/1
		(ई)	
ईसु	=	ईर्ष्या	1/20/6
ईह	=	देखना, विचारना	2/6/5

शब्द		हिन्दी अर्थ	सन्धि, कडवक, यमक संख्या
		(उ)	
उंबर	=	उदुम्बर	2/22
उक्कड	=	उत्कट	2/20/5
उक्खउ	=	उन्मूलन किया	2/27/8
उग्घाड	=	खोलना, उघाड़ना	2/11/7
उच्चेडइ	=	मुख फेरना	1/18/3
उच्छुण	=	पूछना	2/22/5
उत्तरिय	=	नीचे उतरा हुआ	2/21/6
उमग्ग	=	उन्मार्ग	2/18/3
उम्मच्छिअ	=	रुष्ट	2/18/4
उवाय	=	उपाय	2/10/5
उब्भासणु	=	प्रकाशित करनेवाला	2/27
		(ए)	
एवड	=	इतना	2/16/3
एवड्ड	=	इतने अधिक	2/5/8
एवहि	=	इस समय	1/13/1
		(ओ)	
ओहट्ट	=	ह्रास को प्राप्त करना	2/11/7
		(क)	
कंख	=	चाहना	2/12/6, 2/15
कइ	=	की	2/22/3
कइ	=	कितना, कवि	3/11/8
कज्जंतरु	=	कार्य का अन्तराल	2/21
कडक्खण	=	कटाक्ष करना	2/2/1
कणय	=	सोना	3/1/6
कत्थइ	=	कहीं	2/17/6
कय	=	कृत	1/4/9
कलासि	=	तलासी	1/19/4
कल्लाए	=	कल्याण	2/25/5
कहिमि	=	कहीं भी	3/3/7
किम	=	कैसे	2/10/2

शब्द		हिन्दी अर्थ	सन्धि, कडवक, यमक-संख्या
किर	=	निश्चय	2/4/2
कुंट	=	कुबड़ा	1/13/10
कुभंडु	=	खराब बर्तन	1/19/7
कुडउ	=	छलपूर्ण वचन	1/13/3
कोड	=	कौतिक	2/20/9
कोरउ	=	अंकुर	2/13/3
कोवि	=	कोई भी	2/18/2
कोसु	=	कोष	2/5/8

(ख)

खंच	=	खींचना	2/15
खंध	=	कंध	1/3
खव	=	नाश करना	2/4, 2/16
खविय	=	विनाशित	1/12/10
खाल	=	धोना, पखारना	2/17, 2/26/9
खोह	=	विचलित करना	2/6/9

(ग)

गंज	=	हरा देना	2/1/9
गइ	=	लोकोत्तर-गमन	2/3/9
गस	=	ग्रसना	2/13/8
गहिल्ल	=	गम्भीर	2/24/2
गाइ	=	गाता है	2/13/3
गारउ	=	गृह	1/1
गाल	=	गालना, छानना	2/9
गिहत्थु	=	गृहस्थ	2/4/1
गुच्च	=	गुच्छना	2/2
गुणु	=	उपकार	3/10/6
गुब्भ	=	गर्भ	2/21/7

(घ)

घंघल	=	मंथन	1/3/4
घड	=	बनाना	1/3/8
घडिय	=	सम्बद्ध	1/18/3

शब्द		हिन्दी अर्थ	सन्धि, कडवक, यमक-संख्या
चित्त	=	क्षिप्र, गृहीत	1/16/7, 3/5/4
		(च)	
चंदक्काल	=	चन्द्र-सूर्यग्रहण	2/13/8
चत्त	=	चार	2/15/3
चाउत्तणु	=	चाटुकारिता	1/13/7, 1/17/5
चोरकि	=	चुराई वस्तु	1/19/5
		(छ)	
छडिउ	=	त्यक्त	1/16/8
छज्ज	=	शोभना	2/13/9
छम्म	=	छद्म, छल	1/14/5
छाइज्जइ	=	आच्छादित किए जावे	1/14/4
छुडु	=	तत्काल	2/12/2
		(ज)	
जं	=	जिस प्रकार, जो	2/3/9, 2/5/9
जंपाण	=	पालकी	2/10/3
जइ	=	जितेन्द्रिय	2/4/4
जड	=	अचेतन	1/17/1
जणण	=	जनक	3/1/4
जणवय	=	देशवासी	2/3/1
जणेरी	=	जननी	1/15/5, 2/3/3
जाण	=	यान, वाहन	2/20/6
जाणु	=	जानना	3/11/5
जिण	=	जीतना	3/10/4, 1/17/3
जिम	=	जीमना	2/24/4
जिव	=	जीना	2/3/9
जिविड	=	जीवन	2/3/9
जुअ	=	युक्त, दो	1/7/1, 2/4/4
जुज्ज	=	जोड़ना, संयुक्त करना, कार्य में लगाना	3/3/7
जुज्झ	=	युद्ध	1/13/9
जेहउ	=	जैसा	1/14/3

शब्द		हिन्दी अर्थ	सन्धि, कडवक, यमक-संख्या
		(ठ)	
ठव	=	स्थापन करना	3/4/4
		(ड)	
डंभ	=	दम्भ, माया	2/5/2
		(ढ)	
ढोय	=	ढोना	1/10/5
		(ण)	
णअ	=	नत	2/13/1
णक्कि	=	नकटी	2/21/6
णव	=	नमन करना	1/3/6
णहु	=	नहीं	2/16/9
णाइं	=	समान	1/5/3
णिओइ	=	नियोग	3/11/9
णिकिट्ठ	=	निकृष्ट	2/3
णिग्गह	=	निग्रह	3/8/6
णिग्घिण	=	निर्दय	1/18/3
णिभंत	=	निर्भान्त	2/10
णिय	=	देखना	2/23/7, 3/3/3
णियर	=	निकर, समूह	1/3
णियाण	=	निदान	2/24/6
णि रु	=	निश्चित	2/1/2
णिरुत्तउ	=	निश्चित	3/4/2
णिवडइ	=	नीचे गिरती है	2/16/10
णिवार	=	निषेध करना	2/3
णिविड	=	प्रगाढ घना	1/1/2
णिसुंभ	=	नाशक	2/1, 3/1/2
णिहइरइ	=	निहारते हुए	1/6/4
णिहय	=	निभाल, देखना	2/2/9
णिहाल	=	निहत	2/1/2
		(त)	
तं	=	वह, उसे, वैसे	2/3/9
तणउ	=	लघु, छोटा	1/6/9

शब्द		हिन्दी अर्थ	सन्धि, कडवक, यमक-संख्या
तमालि	=	अन्धकार समूह	2/16/10
तस	=	त्रास पाना	2/18/4
ताम	=	वह	2/11/5
ताय	=	पिता	2/16/9
तुरउ	=	अश्व	1/17/1
तेहउ	=	वैसा	1/14/3

(थ)

थड्ढ	=	निश्चल	1/5/2
थवड़ी	=	घरोहर	1/18/8
थेर	=	वृद्ध	2/16/2
थेरि	=	वृद्धा	2/3/3

(द)

दरिस	=	दिखलाना	3/1/1
दाव	=	दिखलाना	1/7
दिहि	=	धैर्य	3/7
दीस	=	देखना	2/3/4
दुइज्ज	=	दूजी	2/23
दुद्धर	=	दुर्वह	2/1/1
दुब्बट्टमि	=	दूब-स्थल	2/13/3
दुवारसि	=	द्वादशी	2/13/9
दुव्वार	=	दुर्निवार	1/1/11
दुहोह	=	दुःख का समूह	2/5/8
दू	=	दो	2/17/4
दूई	=	दूती	2/8/4
दोहग्ग	=	दुर्भाग्य	2/3/8, 2/18/1

(ध)

धीय	=	पुत्री	2/20/10
धुउ	=	धोकर	1/1/6
धुर	=	ऋणी	1/18/3

शब्द		हिन्दी अर्थ	सन्धि, कडवक, यमक-संख्या
धुव	=	निश्चल	1/1/6
धूअ	=	कम्पित	2/21/9

(न)

निच्च	=	नित्य	1/12
निद्धाड	=	बाहर निकालना	1/15/4

(प)

पंगुइ	=	ढकना	2/20/4
पंजलु	=	सरल	1/9/6, 1/20/1
पइ	=	पति	2/17/2
पइ	=	तुम	3/10/5
पइसर	=	प्रवेश करना	2/27/9
पएस	=	पड़ौसी	2/17/4
पच्छइ	=	पश्चात्	2/20/6
पयंप	=	कहना	1/13/6
पयड	=	प्रकट करना	2/27
परमप्पउ	=	परमात्मा	2/1
परमप्पय	=	मोक्ष	1/1/3
परम्मुह	=	पराङ्मुख	2/19
परियाणिय	=	परिज्ञात	2/27/1
पवाणु	=	प्रमाण	2/23/5
पवित्थर	=	विस्तार	1/1
पसत्थ	=	प्रशस्त	3/8/1, 2/4/7
पह	=	पथ	1/9/10
पारद्धि	=	शिकार	1/12/7
पाव	=	पाप, अशुभ कर्म	2/11/4
पियर	=	जनक	2/16/9
पिल्ल	=	फैंकना	1/10/2
पीवर	=	पुष्ट	1/12/5
पूया	=	पूजा	2/13/8
पोट	=	पेट	2/20/3
पोढतण	=	प्रौढता	2/23/10

शब्द		हिन्दी अर्थ	सन्धि, कडवक, यमक-संख्या
		(फ)	
फुड	=	प्रकट	1/3/8, 3/10/7
फुड	=	नष्ट होना, फूटना	2/4/3
फुर	=	स्पष्ट	2/10/5
फेड	=	विनाश करना, दूर हटाना	1/10/4, 2/16/6, 2/27, 3/10/6
		(भ)	
भंडु	=	बर्तन	1/19/7
भंति	=	भ्रान्ति	1/2/5
भंति	=	भक्ति	2/22/3
भउ	=	भय	1/8/2
भग्गु	=	भग्न	1/5/1
भंडारउ	=	पूज्य	1/1
भर	=	स्मरण करना	2/18/10, 3/8/7
भवीस	=	भविष्य	1/10/6
		(म)	
मंजिट्ठउ	=	मजीठ के रंग का	2/20/5
मंड	=	रोकना, मनाना	2/6/9
मंडणु	=	शृंगार	2/20/4
मंदल	=	मर्दलवाद्य	2/13/10
मउ	=	मद	1/12/10
मउझण्ण	=	मध्याह्न	2/24/6
मत्थ	=	माथा, मस्तक	3/1/9
मय	=	मद	2/23/6
मयरद्धउ	=	मकरध्वज	2/2/4
महावइ	=	महा आपत्ति	1/10/6
माण	=	अनुभव करना	2/25,8

शब्द		हिन्दी अर्थ	सन्धि, कडवक, यमक-संख्या
मिच्छ	=	इच्छा	1/19
मीसण	=	मिश्रण	1/19/7
मुअ	=	मृत	3/9/6
मुणिज्जइ	=	मनन किया जावे	1/13/1

(र)

रड	=	रोना	3/10/3
रत्त	=	अनुरक्त	2/17/7
राउल	=	राजकुल	1/7
रीणउ	=	शिथिल, श्रान्त	1/3/2
रुद्ध	=	अवरुद्ध	1/15/5
रेह	=	दीपना	1/10/6
रोरु	=	दरिद्र	2/5/7

(ल)

लग्ग	=	लगना, संग करना	2/3/9, 2/9/6
ला	=	लेना	2/18/2
लागय	=	लगाना, जोड़ना	3/10/1
लोव	=	लोप	1/2/7

(व)

वंभु	=	ब्रह्म, निराकार, परमात्मा	2/3/2
वइ	=	निश्चय	1/8/1
वइ	=	व्रती	2/24/8
वज्जर	=	कहना	1/3/1
वट्ट	=	रहना	2/6/2
वम्मह	=	कामदेव	2/1/7
वम्मुल्लुरण	=	वर्मा	1/15/2
वलय	=	खेत, गृह	1/6/8
वह	=	प्रवृत्त होना	2/23/10
वाइ	=	वादी	2/13/9
वार	=	रोकना	2/23

शब्द		हिन्दी अर्थ	सन्धि, कडवक, यमक संख्या
वाल	=	अज्ञानी	2/26/1
विउ	=	विद्वान्	1/2/3, 1/10/3
विउ	=	विछोह	1/10/3
विउल	=	विशाल	1/9/7
विकत्तु	=	विनाशक	1/9/6
विगय	=	विगत	1/1/6
विगोव	=	रहस्योद्घाटन करना	2/8/4
विज्ज	=	होना	3/11/8
विज्ज	=	वीजना करना	3/2
विज्ज	=	बिजली	2/3/9
विढत्त	=	उपार्जित	3/4/2
वितिट्ठु	=	अस्थिर	3/7/6
वियंभ	=	जभाई लेना	3/2/9
वियप्प	=	विचार करना	3/6/5
विरइ	=	विरक्त	3/10
विरच्च	=	विरक्त	2/10/1
विराहिउ	=	विराधित	1/20/7
विरुव	=	कुरूप	1/18
विहड	=	विघटित होना	2/18/6, 3/9/1
विहुणिय	=	उन्मूलन करके	1/8
वीसास	=	विश्वास	1/20/5
वीह	=	डरना	2/6/5
वुड्ढत्तण	=	बुढ़ापा	2/10/5
वूझ	=	जानना, पूछना	2/12/2, 2/27
वोल	=	अतिक्रमण करना	2/9
वोहित्थ	=	जहाज	1/6/3

(स)

संजय	=	महावीर से दीक्षित एक राजा, संयमी	1/1
संधिउ	=	संधान	2/22/6
संधिउ	=	पुस्तक का एक परिच्छेद	2/24/8
संपायउ	=	आया	1/16/8

शब्द		हिन्दी अर्थ	सन्धि, कडवक, यमक-संख्या
संभर	=	स्मरण करना	3/10/5
संभव	=	संशय होना	1/11/2
सउह	=	शपथ	3/9/8
सज्जिय	=	सज्जित	2/23
सत्त	=	सत्त्व	2/13/5
समग्ग	=	स्वमार्ग	1/5/6
समग्गल	=	समग्र	1/18
समत्त	=	समाप्त	2/27
समुब्भव	=	उत्पत्ति	2/22/4
सय	=	स्वयं	1/14
सया	=	सदा	2/9/10
सर	=	स्मरण करना	3/2/1
सरह	=	शरभ	1/6/4
सलह	=	श्लाघा	1/16/1
सलहणु	=	श्लाघा	1/16/1
सहु	=	साथ	1/11/1
साइणि	=	शाकिनी	2/20/4
साद	=	आवाज	2/20/10
साया	=	साता	1/14/5
सारि	=	दांवपूर्वक खेल	2/20/7
साह	=	ग्रहण करना	2/27/4, 3/11
सिह	=	इच्छा करना	2/18/9
सिहि	=	अग्नि	2/24
सुइ	=	शुचि	2/16/9
सुरय	=	सुरति	2/1/2
सुवा	=	सुता	2/20/7
सोइ	=	सोचना	3/11/4
सोस	=	सोखना	1/5/4

(ह)

हट्ट	=	हाट, मग्ग	2,2/4
हम्म	=	हन् (वध) करना	1/17/2

शब्द		हिन्दी अर्थ	सन्धि, कडवक, यमक-संख्या
हरणु	=	पोषणकर्त्ता	1/1
हिंड	=	भ्रमण करना	2/21/6
हुंत	=	हुआ	2/18/2
हुंतउ	=	हुआ	1/15/1

सूक्ति-कोश

1. ण वि कासु वि हउ ण वि को वि मज्झु । 1.2.6
—मैं किसी का नहीं हूँ और न कोई मेरा है ।

2. अप्पेण णिहिल एक्कल्ल बुज्झु । 1.2.6
—आत्मा से सभी को अकेला जानो ।

3. सव्वह सहुच्छंडहि राउ दोसु । 1.2.9
—सभी के साथ राग-द्वेष त्यागो ।

4 करि मित्तिभाउ णासिय विरोहु । 1.2.9
—विरोध का नाश कर मैत्रीभाव करो ।

5. परदव्व विसयच्छंडहि ममत्तु । 1.2.10
—परद्रव्य विषयिक ममत्व त्यागो ।

6. हणि मोहजालु भावहि समत्तु । 1.2.10
—मोहजाल का नाशकर समत्व को भाओ ।

7. जीवाइ पयत्थह सद्दहणु । 1.3.3
—जीवादि पदार्थों का श्रद्धान करो ।

8. वोहित्थ कज्जु किं सिल करइ । 1.6.3
—क्या शिला नौका का कार्य करती है ।

9. मुणि गुण चिंतइं सुहु संभवए । 1.6.10
—मुनियों के गुणों का चिंतन करने से सुख उत्पन्न होता है ।

10. सो धम्मु खविय संसारमलु । जीवह दरिसइ सिव-सुक्ख फलु ॥ 1.7.5
—धर्म वह है जो सांसारिक मलिनता का क्षय कर जीवों को शिव-सुखरूपी फल दर्शाता है ।

11. सहसा कोवेण ण णरु हणही । 1.8.6
—हे मानव ! क्रोध से एकाएक घात नहीं करो ।

12. घरु-गामु-णयरु-वणु मा डहहि । 1.8.9
—घर, ग्राम, नगर और वन मत जलाओ ।

13. पंजल मणु कय सब्भाव रइ । 1.9.6
—मन सरल करके सद्भावों में रत रहो ।

14. तुहु लहहि सुहासुह कम्मवसू । 1.9.10
—तुम शुभ और अशुभ कर्मवश पाते हो ।

15. सहु केण वि वइरु मा हियइ धरि । 1.11 1
—किसी के भी साथ हृदय में वैर मत रखो ।

16. अण उवयारहो उवयारु करि । 1.11.1
—अनुपकारी का भी उपकार करो ।

17. विणु खमइ ण लब्भइ जीवदया । 1.11.3
—क्षमा बिना जीव दया प्राप्त नहीं होती ।

18. कोहाणलेण तप्पंति णरा । 1.11.10
—मनुष्य क्रोधाग्नि से संतप्त होते हैं ।

19. संसार असारहो बहु दुह-भारहो । 1.11.
—संसार असार एवं बहुत दुःखों का भार है ।

20. सुहु दिण्णउ लब्भइ अप्पणउ । 1.12 2
—सुख देने से अपने को प्राप्त होता है ।

21. णिसिभोयणु बहु जीवह मरणु । 1.12.4
—रात्रि भोजन अनेक जीवों के मरण से होता है ।

22. पीवरि कप्पडि जलु गालियइ । 1.12.5
—मोटे कपड़े में पानी छानो ।

23. वयणु असच्चु कयावि ण वुच्चइ । 1.13.1
—असत्य वचन कभी नहीं बोले ।

24. सहसा दोसु ण कासु वि दिज्जइ । 1.14.1
—यकायक किसी को भी दोष नहीं दिया जाता है ।

25. वयणु चविज्जइ करिसु णिरिक्खउ । 1.14.2
—वचन देख-भालकर बोला जावे ।

26. कासु वि बुरउ ण चित्ति धरिज्जइ । 1.14.9
—हृदय में किसी का भी बुरा धारण नहीं किया जाता है ।

27. णिय-परहिउ जग्गि वुच्चइ । 1.14
—अपने और पराये हित के लिए बोलो ।

28. सव्वु वि सम भावेण खमिज्जइ । 1.15.7
—सभी को समताभाव से क्षमा किया जाता है ।

29. अप्पउ ण वि सलहणु चाहिज्जइ : 1.16.1
—अपनी प्रसंसा नहीं चाही जाती है ।

30. कासु वि अण-उवयारु ण किज्जइ । 1.16.2
—किसी का भी अनुपकार नहीं किया जाता है ।

31. परधणु ण वि भव्वेण हरिव्वउ । 1.16.6
—भव्य पुरुष द्वारा पराया धन नहीं चुराया जाना चाहिए ।

32. अण दिण्णउ सयलु वि वज्जिज्जइ । 1.16.10
—बिना दिया सब त्यागा जाता है ।

33. ण वि कासु वि अहियारु हरिज्जइ । 1.17.5
—किसी का भी अधिकार नहीं चुराया जाता है ।

34. करि चाडुत्तणु किं पि ण लिज्जइ । 1.17.5
—चाटुकारिता करके कुछ भी नहीं लिया जाता है ।

35. एक्कहो हरिवि ण अण्णहु दिज्जइ । 1.17.8
—एक का हरकर (चुराकर) दूसरे को नहीं दिया जाता ।

36. ण वि णिय दोसु परहो लाइज्जइ । 1.17.8
—अपना दोष दूसरों पर नहीं लाया जाता है ।

37. लच्छी खय हासु वि भुवणि ण कासु वि । 1.17.
—लक्ष्मी क्षयशील और ह्रासवान् है, वह संसार में किसी की भी नहीं ।

38. ण वि कासु चोरी लाइज्जइ । 1.19.1
—किसी की भी चुरायी गई वस्तु नहीं लाई जाती है ।

39 मउल ण लिज्जइ चोर किराणउ । 1.19.5
—चुराया गया किराना मोल नहीं लिया जाता ।

40. णाडी भक्खणु णाउ महंतउ । 1.19.7
—नाड़ी (नस) के भक्षण में महान् पाप है ।

41. पाउ ण लग्गइ पंजलि चित्तहं । 1.20.1
—सरल चित्त को पाप नहीं लगता है ।

42. पुरिसिहि पर-तिय संगु ण किव्वउ । 2.1 4
—पुरुषों के द्वारा परस्त्री-संग नहीं किया जाना चाहिए ।

43. णारिहि ण वि पर पुरिसु रमेव्वउ । 2.1.4
—नारियों के द्वारा पर-पुरुष में नहीं रमा जाना चाहिए ।

44. संसारु णिरंतरु दुःखभारु । 2.4.9
—संसार निरंतर दुःख का भार है ।

45. सिद्धत्तणु सासय सुक्खभारु । 2.4.9
—सिद्धत्व शाश्वत् सुख का भार है ।

46. बंभे कड्ढिज्जइ भवहु जीउ । 2.4.10
—ब्रह्मचर्य द्वारा जीव संसार से निकाला जाता है ।

47. जीवहु मेहुणु भव-विद्धि हेउ । 2.5.1
—मैथुन, जीवों की संसार वृद्धि का कारण है ।

48. पर बंभु होइ सुह अमियचंदु । 2.5.3
—उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य से चन्द्रजनित अमृत के समान सुख होता है ।

49. विणु बंभहो कोइ ण जगि सरणु । 2.8.2
—बिना ब्रह्मचर्य के संसार में कोई शरण नहीं ।

50. किं किं ण मयण-वसगउ करइ । 2.9.5
— काम का वशीभूत क्या क्या नहीं करता ?

51. जहिं भंडारु वि अप्पउ मुसेइ ।
पाहरिउ रक्ख तसु किं करेइ ।। 2.16.7
—जहां भंडारी स्वयं चोरी करता है, उसके लिए रक्षक पहरेदार क्या करे ।

52. मणु पसरंतु तियहि खंचेव्वउ । 2.17.2
—स्त्रियों द्वारा फैलते हुए मन का संकोच किया जाना चाहिए ।

53. मा कुगुरु-कुदेवह थुवहु करउ । 2.18.8
—कुगुरु-कुदेव की स्तुति मत करो ।

54. दया-धम्मु, सुरिसि-गुरु, देव-जिणु । 2.22.10
—दया-धर्म, सुऋषि-गुरु हैं और जिनेन्द्र-देव हैं ।

55. जीवहं करुणायरु मुणि वि तच्चु । 2.23.4
—तत्वों को जानकर जीव-दया करो ।

56. ण वि भासइ पर अणहिउ असच्चु । 2.23.4
—पर अनहितकारी असत्य नहीं बोलो ।

57. तण्हइ विमुक्क संतोसलीणु । 2.23.6
—तृष्णा से मुक्त होकर संतोष में लीन रहो ।

58. ण वि दिसउ णिहालइ पहि चलंति । 2.23.7
—राह चलते दिशाएँ मत निहारो ।

59 चल्लइ चरणइ अग्गिउ णियति । 2.23.7
— चलते हुए चरणों के आगे देखते हैं ।

60. पच्छित्तउ सव्वु खालइ कुकम्मु । 2.26.9
—(जीव) पश्चाताप करके सभी कुकर्म धो डालता है ।

61. सव्वह समाणु परिहरि वि वइरु । 2.26.8
—सभी समान है, वैर त्यागो ।

62. इय णिय हिउ जाणिवि अप्प वसु । 2.27.5
—अपना हित अपने अधीन जानो ।

63. परिगह विद् विहि आरंभ भरु । 3.1.2
—परिग्रह-विधि आरम्भ भरी जानो ।

64. कम्में संसारे जीवु भमइ । 3.1.3
—जीव संसार में कर्म से भ्रमता है ।

65. इय मुणिवि परिग्गह दुह-जणणु । 3.1.4
—परिग्रह दुखोत्पादक जानो ।

66. परिग्गहु भवहेउ मुणंतु मणे । 3.1.10
—मन में परिग्रह को संसार का कारण जानो ।

67. विणु आरंभ कम्म-भरु छिज्जइ । 3.1.7
—आरम्भ न होने से कर्म-भार क्षीण होता है ।

68. कम्म-खय सिवसुहु संपज्जइ । 3.4.7
—कर्म-क्षय से शिव-सुख प्राप्त किया जाता है ।

69. वउ किज्जइ करिवि उदारि चित्तु । 3.5.2
—व्रत उदार चित्त करके किए जाते हैं ।

70. ण वि दुक्खु अत्थि वय पालणेण । 3.5.8
—व्रत पालने से दुःख नहीं है (नहीं होता है) ।

71. किं जलइ अग्गि जलहर जणेण । 3.5.8
—क्या मेघ-जल से अग्नि जलती है ?

72. विणु दिढ वएण लब्भइ ण सुक्खु । 3.6.6
—व्रत की दृढता बिना सुख प्राप्त नहीं होता ।

73. लच्छी चंचल खणि दिट्ठ णट्ठ । 3.7.6
—लक्ष्मी चंचल है, क्षणभर दिखाई देकर नष्ट हो जाती है ।

74. मोक्खु वि तह अक्खय अणंत-सुक्खु । 3.7 9
—मोक्ष-अक्षय अनन्त-सुख (देता है) ।

75. देसउ परत्तियउ वडउ वित्तु । 3.9 11
—देशव्रत परलोक का बड़ा धन है ।

76. विणु सम्मत्तें ण वि होइ णाणु । 3.11.5
—बिना सम्यक्त्व के ज्ञान नहीं होता ।

77. विणु णाणें चारित्तु वि अलक्खु । 3 11.6
—बिना ज्ञान के चारित्र भी नहीं देखा गया ।

78. विणु चारित्तें लब्भइ ण मोक्खु । 3.11.6
—बिना चारित्र के मोक्ष प्राप्त नहीं होता है ।

79. विणु मोक्खें सुह लेसु वि ण होइ । 3.11.7
—मोक्ष बिना लेशमात्र भी सुख नहीं होता है ।

80. पालिज्जइ दिढ वउ गुरु णिओइ । 3.11 9
दृढ व्रत गुरु के नियोग में (ही) पाला जाता है ।

शुद्धि-पत्र

विषय वस्तु	प्रकरण एवं पृष्ठ संख्या		अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
प्रस्तावना		15	ब्रह्मचर्याणव्रत	ब्रह्मचर्याणुव्रत
	कवि अभिप्राय	18	धारण करे	धारण नहीं करे
		19	वट्टेकर	वट्टकेर
मूलभाग	आरम्भ	2	वीतरागाय:	वीतरागाय
	1/12/2,	24	सुहु दीणउ	सुहु दिण्णउ
	1/13/1,	26	वमणु	वयणु
	घत्ता 1/13	26	हीउ	हिउ
	घत्ता	33	उनकी	उनको
	1/17/7,	34	विहिम्णु	विहिण्णु
	1/19/6	38	होणाहिय	हीणाहिव
	घत्ता	43	उपशय	उपशम
	2/3/3	46	ससाणी	समाणी
	2/4/8	48	रह	रइ
	2/4/10	48	कडिज्जइ	कड्ढिज्जइ
	2/5/4	51	रमण	रमण
	2/6/8	52	होण	हीण
	घत्ता	54	वज्जण	वज्जणु
	2/7/7	55	विभूषत	विभूषित
	घत्ता	56	ययण	मयण
	2/9/1	59	संशेत	संकेत
	घत्ता	61	निभान्त	निर्भ्रान्त
	2/11/9	62	मण	मणु
	2/12/9	64	णिवाण	णिव्वाण
	2/12/1	65	नेरु	मेरु
	2/19/1	78	भार	भरि
	2/21/5	82	पुब्व	पुव्वें
	2,21/10	82	मणेहिमि	मण्णेहिमि
	घत्ता 2/22	84	णवाणउ	णवणिउ
	घत्ता	89	जिनेन्द्रचरण	जिनेन्द्रचरण
	3/6/6	106	अतिथि	अत्थि

विषय वस्तु	प्रकरण एवं पृष्ठ संख्या		अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
	3/6/7	106	णथि	णत्थि
	प्रशस्ति पंक्ति-1	118	वष	वर्ष
	,, 2	118	कोत्तिदेवात्	कीत्तिदेवात्
		118	रविवार	रविवासरे
शब्दसूची	इ	121	2/17/1	2/17/7
	ई	121	ईर्ष्या	ईर्ष्या
	उग्घाड	122	2/11/7	2/21/7
	धंधल	123	1/3/4	1/3/5
	णग्ग	125	2/13/1	2/13/7
	णिसुंभ	125	3/1/2	3/7/2
	णिहय	125	निभाल, देखना	निहत
	णिहय	125	2/2/9	2/1/2
	णिहाल	125	निहत	निभाल, देखना
	णिहाल	125	2/1/2	2/2/9
	भवीस	128	1/10/6	1/20/6
	राउल	129	1/7	1/17
	वइ	129	2/24/8	2/24/2
	हम्म	131	1/17/2	1/17/3